AYAR-SUTTAM
By
MAHOPADHYAY
CHANDR PRABH SAGAR

दिसम्बर १९८९

संशोधन
डॉ उदयचन्द जैन

प्रकाशक

प्राकृत भारती अकादमी
३८२६-यति श्यामलालजी का उपाश्रय,
मोतीसिंह भोमियो का रास्ता,
जयपुर-३०२००३ (राज)

श्री जितयशाश्री फाउंडेशन
९-सी, एस्प्लानेड रो ईस्ट,
कलकत्ता-७०००६९

श्री जैन श्वे नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ
पो. मेवानगर-३४४०२५
जिला- बाडमेर (राज)

मुद्रक ·
पारदर्शी प्रिन्टर्स
२६१, नाम्रावती मार्ग, उदयपुर

प्रकाशकीय

आगमवेत्ता महोपाध्याय श्री चन्द्रप्रभसागरजी सम्पादित-अनुवादित 'आयार-सुत' प्राकृत-भारती, पुष्प-६८ के रूप मे प्रकाशित करते हुए हमे प्रसन्नता है ।

आगम-साहित्य जैन धर्म की निधि है । इसके कारण आध्यात्मिक वाङ्मय की अस्मिता अभिवर्धित हुई है । जैन-आगम-साहित्य को उसकी मौलिकताओ के साथ जनभोग्य सरस भाषा मे प्रस्तुत करने की हमारी अभियोजना है । 'आयार-सुत्त' इस योजना की क्रियान्विति का एक चरण है ।

'आयार-सुत्त' जैन आगम-साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है । इसमे आचार के सिद्धान्तो और नियमो के लिए जिस मनोवैज्ञानिक आधार-भूमि एव दृष्टि को अपनाया गया है, वह आज भी उपादेय है । आचाराग की दार्शनिक एव समाज-शास्त्रीय दृष्टि भी वर्तमान युग के लिए एक स्वस्थ दिशा-दर्शन है ।

ग्रन्थ के सम्पादक चन्द्रप्रभजी देश के सुप्रतिष्ठित प्रवचनकार हैं, चिन्तक हैं, लेखक हैं और कवि हैं । उनकी वैदुष्यपूर्ण प्रतिभा प्रस्तुत आगम मे सर्वत्र प्रतिबिम्बित हुई है । अनुवाद एव भाषा-वैशिष्ट्य इतना सजीव एव सटीक है कि पाठक की सुप्त चेतना का तार-तार झकृत कर देती है । प्रस्तुत लेखन 'आयार-सुत्त' का मात्र हिन्दी-अनुवाद ही नही है, वरन् अनुसधान भी है, जिसे एक चिन्तक की खोज कह सकते हैं ।

गणिवर श्री महिमाप्रभसागरजी ने इस आगम-प्रकाशन-अभियान के लिए हमे उत्साहित किया, एतदर्थ हम उनके हृदय से आभारी हैं ।

पारसमल भसाली	प्रकाशचन्द दफ्तरी	देवेन्द्रराज मेहता
अध्यक्ष	ट्रस्टी	सचिव
श्री जैन श्वे नाकोडा	श्री जितयशाश्री फाउडेशन	प्राकृत भारती अकादमी
पार्श्व तीर्थ, मेवानगर	कलकत्ता	जयपुर

पूर्व स्वर

'आयार-सुत्त' भगवान् महावीर की सन्यस्त आचार-सहिता है। इसमे साधक की भीतरी एव बाहरी व्यक्तित्व की परिपूर्ण झाँकी उभरी है। सद्विचार की शब्द-सन्धियों मे सदाचार का सचार ही इसकी प्राणधारा है।

'आयार-सुत्त' जैन परम्परा का अखूट खजाना है। पर यदि इस ग्रन्थ को मात्र जैन श्रमण का ही प्रतिबिम्ब कहा जाए, तो इसके भूमा-कद को बौना करने का अन्याय होगा।

'आयार-सुत्त' सार्वभौम है। इसे किसी सम्प्रदाय-विशेष की चौखट मे न बाँधकर विश्व-साधक के लिए मुहैया कराने मे ही इस पारस-ग्रन्थ का सम्मान है। इसकी स्वर्णिमता/उपादेयता सार्वजनीनता मे है। यह उन सबके लिए है जो साधना के अनुष्ठान मे स्वय को सर्वतोभावेन समर्पित करना चाहते हैं।

'आयार-सुत्त' साधनात्मक जीवन-मूल्यों का स्वस्थ आचार-दर्शन है। यह साधक के अभिनिष्क्रात कदमों को नयी दिशा दरशाता है और उसकी आँखों को विश्व-कल्याण के क्षितिज पर उघाडता है। महावीर की यह कालजयी शब्द-सरचना विश्व-मानव की हथेली पर दीपदान है, जिसके प्रकाश मे वह प्रतिसमय दीप्ति और दृष्टि प्राप्त करता रहेगा। 'आयार-सुत्त' मात्र महावीर की साधनात्मक देशना नहीं है, अपितु उनकी करुणामूलक सहिष्णुता की अस्मिता भी है। वे ही तो अक्षर-पुरुष है इस आगम के अनक्षर अक्षरों के।

आगम ज्ञान-तीर्थ है। 'आयार-सुत्त' प्रथम तीर्थ है। इसका मनन, स्पर्शन और निदिध्यासन आत्म-साक्षात्कार के लिए महत् पहल है। इसके सूत्र-गवाक्षों मे से कुछ ऐसे तथ्य रोशन होते हैं जिनमे समृति-श्रेय की छाया झलकती है।

यद्यपि इसकी अगुली श्रमण की ओर इगित है, किन्तु तनाव एव सताप की लपटों मे झुलसते विश्व को शान्ति की स्वच्छ चन्दन-डगर देने मे इसकी उपयोगिता विवाद से परे है।

'आयार-सुत्त' का हर अध्याय साधना-मार्ग का मील का पत्थर है। आठवा अध्याय साधक का आखिरी पडाव है। नौवा अध्याय ग्रन्थ का उपसहार नहीं,

अपितु दर्पण है। साधना-जगत् का चप्पा-चप्पा छानने के बाद महावीर ने जो पगडंडी बताई, वही आठ अध्यायो के रूप मे सीधे-सादे ढङ्ग से प्रस्तुत है। इसके छोटे-छोटे सूत्र/सूक्त महावीर की नव्य ऋचाएँ है। इनकी उपादेयता कदम-कदम पर अचूक है। महावीर के इन अभिभाषणों मे कहीं-कहीं काव्यात्मक धडकन भी सुनाई देती है। यदि इन सूत्रों से घुलमिलकर बात की जाये, तो इनके पेट की अर्थ-गहराइयाँ उगलवाई जा सकती है।

महावीर ने 'आयार-सुत्त' मे श्रमण-आचार का जर्रा-जर्रा सामने रख दिया है। सचमुच, यह महावीर के आचारगत मापदण्डों का अद्भुत स्मारक है।

इसका पहला अध्ययन 'जियो और जीने दो' के सांस्कृतिक बोधवाक्य को आँखों की रोशनी बनाकर स्वस्तिकर जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

दूसरा अध्ययन अन्तर-व्यक्तित्व मे अध्यात्म-क्रान्ति का अभियान चालू रखने के लिए खुलकर बोलता है।

तीसरा अध्ययन जय-पराजय जैसे उठापटक करने वाले परिवेश मे स्वय को तटस्थ बनाए रखने की सीख देता हुआ साधक को न्याय-तुला थमाता है।

चौथा अध्ययन सोये मानव पर पानी छिटककर उसकी सम्यक्-दृष्टि को उघाडते हुए आत्म-अनात्म के दूध-पानी मे भेद करने का विज्ञान आविष्कृत करता है।

पाँचवा अध्ययन विश्व मे सम्भावित हर तत्त्व-ज्ञान को खूब मथकर निकाला गया नवनीत है, जो आत्मा के मुखडे को निखारने के लिए सौन्दर्य-प्रसाधन है।

छट्ठा अध्ययन जीवन की मैली-कुचेली चादर को अध्यात्म के घाट पर रगड-रगड कर धुनने/धोने की कला सिखाता है।

सातवा अध्ययन काल-कन्दरा मे चिर समाधिस्थ है।

आठवा अध्ययन ससार की साँझ एव निर्वाण की सुबह का स्वर्णिम दृश्य दरशाता है।

नौवा अध्ययन महावीर के महाजीवन का मधुर सगान है।

'आयार-सुत्त' मेरे जीवन की प्रसन्नता और सम्पन्नता है। मुझे इससे बहुत प्रेम है। जैसा मैंने इसको अपने ढङ्ग से समझा है, उसे उसी रूप मे ढाल दिया है। पूर्वाग्रह के प्रस्तरों को हटाकर यदि इसे स्वय के प्राणों मे अनवरत उतरने दिया गया, तो यह प्रयास मुमुक्षु पाठक को अमृत स्नान कराने मे इकलाब की आशा है।

उदयपुर, १४-११-८६ —चन्द्रप्रभ

प्रवेश-द्वार

आयार-सुत्तं : सदाचार का रचनात्मक प्रवर्तन

आगम-क्रम : प्रथम आगम ग्रंथ

प्रवर्तन : भगवान महावीर

प्रस्तुति : आचार्य सुधर्मा एवं अन्य

प्रतिपाद्य-विषय . श्रमण-आचार का सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक पक्ष

रचना-काल : ईसा-पूर्व छठी से तीसरी शताब्दी मध्य

रचना-शैली : सूत्रात्मक शैली

भाषा : अर्धमागधी

रस : शान्त-रस/वैराग्यरस

मूल्य : बौद्धिकता एव भावनात्मकता

वैशिष्ट्य . अर्थ-प्रावान्य
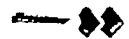
अनुक्रम

पढमं अज्झयण

सत्थ-परिण्णा

प्रथम अध्ययन

शस्त्र-परिज्ञा

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'शस्त्र-परिज्ञा' है। शस्त्र हिंसा का वाचक है। परिज्ञा प्रज्ञा का पर्याय है। इस प्रकार यह अध्याय हिंसा और अहिंसा का विवेक-दर्शन है।

इसमें समाज एवं पर्यावरण की समस्याओं का समाधान है। जीव-जगत् के सङ्घटन, नियमन तथा विघटन की सूत्रात्मक परिचर्चा इस अध्याय की आत्म-कथा है।

सर्वदर्शी महावीर ने समग्र अस्तित्व एवं पर्यावरण का गहराई से सर्वेक्षण किया है। प्रस्तुत अध्याय उनकी प्रथम देशना है। इसमें पर्यावरण की रक्षा हेतु सद्विचार के सूत्रों में सदाचार का प्रवर्तन है। उनके अनुसार पर्यावरण का रक्षण अहिंसा का जीवन्त आचरण है। हमारे किसी क्रिया-कलाप से उसे क्षति पहुँचती है, तो वह आत्म-क्षति ही है। सभी जीव सुख के अभिलाषी हैं। भला, अपने अस्तित्व की जड़ें कौन उखड़वाना चाहेगा? अहिंसा ही माध्यम है, पर्यावरण के संरक्षण एवं पल्लवन का।

महावीर के विज्ञान में जीव-जगत् की दो दिशाएँ थीं — वनस्पति-विज्ञान और प्राणि-विज्ञान। 'आचार-सूत्र' में इन्हीं दो विज्ञानों का ऊहापोह किया गया है। इसमें वनस्पति, प्राणि और मनुष्य के बीच भेद की सीमारेखा अनङ्कित है। पर्यावरण के प्रति महावीर की यह विराट दृष्टि वैज्ञानिक एवं प्रासङ्गिक है।

पर्यावरण और अहिंसा की पारस्परिक मैत्री है। इन दोनों का अलग-अलग अस्तित्व नहीं है, सहअस्तित्व है। हिंसा का अधिकाधिक न्यूनीकरण ही स्वस्थ समाज की संरचना में स्थायी कदम है। अहिंसा का आदर्श मनुष्येतर पेड़-पौधों के साथ स्थापित करना अहिंसा साधना की आत्मीय प्रगाढ़ता है।

पर्यावरण का अस्तित्व स्वस्थ एव सतुलित रहे, इसके लिए साधक का जागृत और समर्पित रहना साध्य की ओर चार कदम बढाना है। दूसरों का छेदन-भेदन-हनन न करके अपनी कषायों को जर्जरित कर हिंसा-मुक्त आचरण करना साधक का धर्म है। इसलिए अहिंसक व्यक्ति पर्यावरण का सजग प्रहरी है।

पर्यावरण अस्तित्व का अपर नाम है। प्रकृति उसका अभिन्न अङ्ग है। उस पर मँडराने वाले खतरे के बादल हमारे ऊपर बिजली का कौंधना है। इसलिए उसका पल्लवन या भगुरण समग्र अस्तित्व को प्रभावित करता है।

हमारे कार्यकलापो का परिसर बहुत बढ-चढ गया है। उसकी सीमाएँ अन्तरिक्ष तक विस्तार पा चुकी है। मिट्टी, खनिज-पदार्थ, जल, ज्वलनशील पदार्थ, वायु, वनस्पति आदि हमारे जीवन की आवश्यकताएँ है। किन्तु इनका छेदन-भेदन-हनन इतना अधिक किया जा रहा है कि दुनिया से जीवित प्राणियों की अनेक जातियों का व्यापक पैमाने पर लोप हुआ है। प्रदूषण-विस्तार के कारणों मे यह भी मुख्य कारण है।

महावीर ने पृथ्वी के सारे तत्त्वों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने अपने शिष्यो को स्पष्ट निर्देश दिया कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, जीव-जन्तु, मनुष्य आदि पर्यावरण के किसी भी अङ्ग को न नष्ट करे, न किसी और से नष्ट करवाये और न ही नष्ट करने वाले का समर्थन करे। वह सयम मे पराक्रम करे। उनके अनुसार जो पर्यावरण का विनाश करता है, वह हिंसक है। महावीर हिंसा को कतई पसन्द नहीं करते। उन्होंने सङ्घर्षमुक्त समत्वनियोजित स्वस्थ पर्यावरण बनाने की शिक्षा दी।

प्रदूषण-जैसी दुर्घटना से बचने के लिए पेड-पौधों एव पशु-पक्षियों की रक्षा अनिवार्य है। इसी प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि के प्रदूषणों से दूर रहने के लिए अस्तित्व-रक्षा/अहिंसा अपरिहार्य है।

प्रकृति, पर्यावरण और समाज सभी एक-दूसरे के लिए है। इनके अस्तित्व को बनाये रखने के लिए महावीर-वाणी क्रान्तिकारी पहल है। प्रस्तुत अध्याय अहिंसक जीवन जीने का पाठ पढ़ाता है।

पढमो उद्देसो

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—
इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ, तं जहा—
पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
अहे वा दिसाओ आगओ अहमंसि;
अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि ।

२ एवमेगेसिं णो णायं भवइ—
अत्थि मे आया ओववाइए,
णत्थि मे आया ओववाइए,
के अहं आसी ?
के वा इओ चुओ इह पेच्चा भविस्सामि ?

३ से जं पुण जाणेज्जा—
सहसंमइयाए,
परवागरणेणं,
अण्णेसिं वा अंतिए सोच्चा, तं जहा—
पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
दक्खिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,

प्रथम उद्देशक

१ आयुष्मन्! मैंने सुना है। भगवान् के द्वारा ऐसा कथित है—
इस संसार में कुछ लोगों को यह समझ नहीं है, जैसे कि—
मैं पूर्व दिशा से आया हूँ या अन्य दिशा से,
अथवा दक्षिण दिशा से आया हूँ
अथवा पश्चिम दिशा से आया हूँ,
अथवा उत्तर दिशा से आया हूँ,
अथवा ऊर्ध्व दिशा से आया हूँ,
अथवा अधो दिशा से आया हूँ,
अथवा अन्यतर दिशा से या अनुदिशा/विदिशा से आया हूँ।

२ इसी प्रकार कुछ लोगों को यह ज्ञात नहीं होता है—
मेरी आत्मा औपपातिक है,
मेरी आत्मा औपपातिक नहीं है।
मैं कौन था?
अथवा मैं यहाँ कहाँ से आया हूँ और यहाँ से च्युत होकर कहाँ जाऊँगा?

३ फिर भी वह जान लेता है—
स्वयंबुद्ध होने से,
पर-उपदेश से
अथवा अन्य लोगों से सुनकर। जैसे कि—
मैं पूर्व दिशा से आया हूँ या अन्य दिशा से,
अथवा दक्षिण दिशा से आया हूँ,
अथवा पश्चिम दिशा से आया हूँ,
अथवा उत्तर दिशा से आया हूँ,
अथवा ऊर्ध्व दिशा से आया हूँ,

अहे वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि।

४. एवमेगेसिं जं णायं भवइ—
अत्थि मे आया ओववाइए।
जो इमाओ दिसाओ वा अणुदिसाओ वा अणुसचरइ,
सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ जो आगओ अणुसचरइ सो हं।

५. से आयावाई, लोयावाई, कम्मावाई, किरयावाई।

६. अकरिस्सं च हं, कारवेसुं च हं, करओ यावि समणुण्णे भविस्सामि।

७. एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्म-समारंभा परिजाणियव्वा भवंति।

८. अपरिण्णाय-कम्मा खलु अयं पुरिसे जो इमाओ दिसाओ वा अणुदिसाओ वा अणुसचरइ,
सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ साहेइ,
अणेगरूवाओ जोणीओ सधेइ,
विरूवरूवे फासे य पडिसवेदेइ।

९. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया।

१०. इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवंदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउं।

११. एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्म-समारंभा परिजाणियव्वा भवंति।

१२. जस्सेए लोगंसि कम्म-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे।

—त्ति बेमि

अथवा अधो दिशा से आया हूँ,
अथवा अन्यतर दिशा से या अनुदिशा/विदिशा से आया हूँ।

४. इसी प्रकार कुछ लोगो को यह ज्ञात होता है—
मेरी आत्मा औपपातिक है,
जो इन दिशाओ या अनुदिशाओ मे विचरण करती है।
जो सभी दिशाओ और सभी अनुदिशाओ मे आकर विचरण करती है,
वही मैं/आत्मा हूँ।

५. वही आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी है।

६. मैने क्रिया की, मैने करवाई और करने वाले का समर्थन करूँगा।

७. ये सभी क्रियाएँ लोक मे कर्म-बन्धन-रूप ज्ञातव्य है।

८. निश्चय ही, कर्म को न जाननेवाला यह पुरुष इन दिशाओ एव अनुदिशाओ मे विचरण करता है,
सभी दिशाओ और सभी अनुदिशाओ मे जाता है,
अनेक प्रकार की योनियो से सम्बन्ध रखता है,
अनेक प्रकार के प्रहारो का अनुभव करता है।

९. निश्चय ही, इस विषय मे भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है।

१० और इस जीवन के लिए
प्रशसा, सम्मान एव पूजा के लिए
जन्म, मरण एव मुक्ति के लिए
दु खो से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है।]

११ ये सभी क्रियाएँ लोक मे कर्म-बन्धन-रूप ज्ञातव्य हैं।

१२ जिस लोक मे कर्म-बन्धन की क्रियाएँ ज्ञात है, वही परिज्ञात-कर्मा [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

बीओ उद्देसो

१३. अट्टे लोए परिजुण्णे, दुस्संबोहे अविजाणए ।

१४. अस्सिं लोए पव्वहिए ।

१५. तत्थ तत्थ पुढो पास, आउरा परितावेंति ।

१६ संति पाणा पुढो सिया ।

१७. लज्जमाणा पुढो पास ।

१८. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा ।

१९. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढवि-कम्म-समारंभेणं पुढविसत्थं समारंभेमाणे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

२०. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइआ ।

२१. इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवंदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउं ।

२२. से सयमेव पुढवि-सत्थं समारभइ, अण्णेहिं वा पुढवि-सत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा पुढवि-सत्थं समारभंते समणुजाणइ ।

२३. तं से अहियाए, तं से अबोहीए ।

२४. से तं संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

द्वितीय उद्देशक

१३. लोक मे मनुष्य पीडित, परिजीर्ण, सम्बोधिरहित एव अज्ञायक है।

१४ इस लोक मे मनुष्य व्यथित है।

१५. तू यत्र-तत्र पृथक्-पृथक् देख! आतुर मनुष्य [पृथ्वीकाय को] दुःख देते है।

१६ [पृथ्वीकायिक] प्राणी पृथक-पृथक है।

१७ तू उन्हे पृथक-पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख।

१८. ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते है — 'हम अनगार है।'

१९ जो नाना प्रकार के शस्त्रो द्वारा पृथ्वी-कर्म की क्रिया मे सलग्न होकर पृथ्वीकायिक जीवो की अनेक प्रकार से हिंसा करते है।

२०. निश्चय ही, इस विषय मे भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है।

२१. और इस जीवन के लिए
प्रशसा, सम्मान एव पूजा के लिए,
जन्म, मरण एव मुक्ति के लिए
दुःखो से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है।]

२२ वह स्वय ही पृथ्वी-शस्त्र (हल आदि) का प्रयोग करता है, दूसरो से पृथ्वी-शस्त्र का प्रयोग करवाता है और पृथ्वी-शस्त्र के प्रयोग करनेवाले का समर्थन करता है।

२३ वह हिंसा अहित के लिए है और वही अबोधि के लिए है।

२४ वह साधु उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है।

२५. सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा इहमेगेसिं णायं भवइ—

एस खलु गंथे,

एस खलु मोहे,

एस खलु मारे,

एस खलु णरए।

२६ इच्चत्थं गड्ढिए लोए।

२७. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढवि-कम्म-समारंभेणं पुढवि-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

२८. से बेमि—

अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे,

अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,

अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,

अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,

अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,

अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,

अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,

अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,

अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,

अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,

अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,

अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,

अप्पेगे हिययमब्भे, अप्पेगे हिययमच्छे,

अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,

अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,

अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,

अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,

अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,

अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,

अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,

२५ भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगो को यह ज्ञात हो जाता है—
यही [हिंसा] ग्रथि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है।

२६ यह आसक्ति ही लोक है।

२७. जो नाना प्रकार के शस्त्रो द्वारा पृथ्वी-कर्म की क्रिया मे सलग्न होकर पृथ्वीकायिक जीवो की अनेक प्रकार से हिंसा करता है।

२८ वही मै कहता हूँ—
कुछ जन्म से अन्धे होते है, तो कुछ छेदन से अन्धे होते है,
कुछ जन्म से पगु होते है, तो कुछ छेदन से पगु होते है,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जघा तक, तो कुछ छेदन से जघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,
कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक, तो कुछ छेदन से हृदय तक,
कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक,
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन से स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से बाहु तक, तो कुछ छेदन से बाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,
कुछ जन्म से अगुली तक, तो कुछ छेदन से अगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,

अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,
अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

२९. अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

३०. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा अपरिण्णाया भवंति ।

३१. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा परिण्णाया भवंति ।

३२. तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं पुढवि-सत्थं समारंभेज्जा, नेवण्णेहिं पुढवि-सत्थं समारंभावेज्जा, नेवण्णे पुढवि-सत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा ।

३३. जस्सेए पुढवि-कम्म-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि ।

कुछ जन्म मे ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन से होठ तक,
कुछ जन्म मे दात तक, तो कुछ छेदन मे दात तक,
कुछ जन्म मे जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म मे तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म मे गले तक, तो कुछ छेदन मे गले तक,
कुछ जन्म मे गाल तक, तो कुछ छेदन मे गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म मे नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म मे आँख तक, तो कुछ छेदन मे आँख तक,
कुछ जन्म मे भौह तक, तो कुछ छेदन से भौह तक,
कुछ जन्म मे ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,
कुछ जन्म मे शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

२९ कोई मूर्छित कर दे, कोई वध कर दे ।
[जिम प्रकार मनुष्य के उक्त अवयवो का छेदन भेदन कष्टकर है, उमी प्रकार पृथ्वीकाय के अवयवो का ।]

३० शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह पृथ्वीकायिक वध-वधन अज्ञात है ।

३१ शस्त्र समारम्भ न करने वाले के लिए यह पृथ्वीकायिक वध-वधन ज्ञात है ।

३२ उम पृथ्वीकायिक हिंसा को जानकर मेवावी न तो स्वय पृथ्वी-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही पृथ्वी-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही पृथ्वी-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है ।

३३ जिसके लिए ये पृथ्वी कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात हैं, वही परिज्ञात-कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

तइओ उद्देसो

३४. से बेमि—

से जहावि अणगारे उज्जुकडे, णियागपडिवण्णे अमायं कुव्वमाणे वियाहिए ।

३५. जाए सद्धाए णिक्खतो, तमेव अणुपालिया वियहित्ता विसोत्तिय ।

३६. पणया वीरा महावीहिं ।

३७. लोग च आणाए अभिसमेच्चा अकुओभय ।

३८. से बेमि—

णेव सय लोग अब्भाइक्खेज्जा, णेव अत्ताण अब्भाइक्खेज्जा ।

जे लोय अब्भाइक्खइ, से अत्ताण अब्भाइक्खइ ।

जे अत्ताण अब्भाइक्खइ, से लोय अब्भाइक्खइ ।

३९. लज्जमाणा पुढो पास ।

४०. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा ।

४१. जमिण विरूवरूवेहि सत्थेहिं उदय-कम्म-समारंभेणं उदय-सत्थं समारंभमाणे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

४२. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ।

४३ इमस्स चेव जीवियस्स,

परिवदण-माणण-पूयणाए,

जाई-मरण-मोयणाए,

दुक्खपडिघायहेउ ।

तृतीय उद्देशक

३४. वही मैं कहता हूँ—
जिससे अनगार ऋजु-परिणामी, मोक्ष-मार्गी और आर्जवधारी कहा गया है।

३५ जिस श्रद्धा से निष्क्रमण किया, उसका शका-रहित पालन करे।

३६. वीर-पुरुष महापथ पर समर्पित है।

३७ लोक को जिन-आज्ञा से समझकर भयमुक्त हो।

३८ वही मैं कहता हूँ—
[जलकायिक] लोक को न तो स्वय अस्वीकार करे और न ही अपनी आत्मा को अस्वीकार करे।
जो [जलकायिक] लोक को अस्वीकार करता है, वह आत्मा को अस्वीकार करता है, जो आत्मा को अस्वीकार करता है, वह [जलकायिक] लोक को अस्वीकार करता है।

३९ तू उन्हे पृथक पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख।

४० ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते हैं 'हम अनगार हैं।'

४१ जो नाना प्रकार के शस्त्रो द्वारा जल-कर्म की क्रिया मे सलग्न होकर जलकायिक जीवो की अनेक प्रकार से हिंसा करते हैं।

४२. निश्चय ही, इस विषय मे भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है।

४३ और इस जीवन के लिए,
प्रशसा, सम्मान एव पूजा के लिए,
जन्म, मरण एव मुक्ति के लिए
दु खो से छूटने के लिए,
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है]

४४. से सयमेव उदय-सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा उदय-सत्थ समारभावेइ, अण्णे वा उदय-सत्थं समारभते समणुजाणइ ।

४५. त से अहियाए, त से अवोहीए ।

४६. से त सबुज्झमाणे, आयाणीय समुट्ठाए ।

४७. सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अतिए इहमेगेसिं णाय भवइ—
एस खलु गंथे,
एस खलु मोहे,
एस खलु मारे,
एस खलु णरए ।

४८. इच्चत्थं गड्ढिए लोए ।

४९. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदय-कम्म-समारंभेणं उदय-सत्थ समारभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

५०. से वेमि—
अप्पेगे अधमब्भे, अप्पेगे अधमच्छे,
अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,
अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,
अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,
अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,
अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,
अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,
अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हिययमब्भे, अप्पेगे हिययमच्छे,

४४ वह स्वयं ही जल-शस्त्र का उपयोग करता है, दूसरों से जल-शस्त्र का उपयोग करवाता है और जल-शस्त्र के उपयोग करने वालों का समर्थन करता है।

४५ वह हिंसा अहित के लिए है और वही अबोधि के लिए है।

४६. वह (साधु) उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है।

४७. भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगो को यह ज्ञात हो जाता है—
यही (हिंसा) ग्रन्थि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है।

४८ यह आसक्ति ही लोक है।

४९ जो नाना प्रकार के शस्त्रो द्वारा जल-कर्म की क्रिया मे संलग्न होकर जलकायिक जीवो की अनेक प्रकार से हिंसा करता है।

५० वही मैं कहता हूँ—
कुछ जन्म से अन्धे होते हैं तो कुछ छेदन से अन्धे होते है,
कुछ जन्म से पगु होते है तो कुछ छेदन से पगु होते हैं,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जंघा तक, तो कुछ छेदन से जघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,
कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक, तो कुछ छेदन से हृदय तक,

अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,
अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,
अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,
अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,
अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,
अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,
अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

५१. अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

५२. से बेमि—
सति पाणा उदय-निस्सिया जीवा अणेगा ।

५३. इहं च खलु भो ! अणगाराणं उदय-जीवा वियाहिया ।

५४. सत्थं चेत्थं अणुवीइ पासा ।

कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक,
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन से स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से वाहु तक, तो कुछ छेदन से वाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,
कुछ जन्म से अगुली तक, तो कुछ छेदन से अगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,
कुछ जन्म से ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन से होठ तक,
कुछ जन्म से दात तक, तो कुछ छेदन से दात तक,
कुछ जन्म से जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म से तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म से गले तक, तो कुछ छेदन से गले तक,
कुछ जन्म से गाल तक, तो कुछ छेदन से गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म से नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म से आँख तक, तो कुछ छेदन से आँख तक,
कुछ जन्म से भौह तक, तो कुछ छेदन से भौह तक,
कुछ जन्म से ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,
कुछ जन्म से शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

५१ -कोई मूर्छित कर दे, कोई वध कर दे।
[जिस प्रकार मनुष्य के उक्त अवयवो का छेदन-भेदन कष्टकर है, उसी प्रकार जलकाय के अवयवो का।]

५२ वही, मै कहता हूँ—
अनेक प्राणधारी जीव जल के आश्रित हैं।

५३ हे पुरुष ! इस अनगार जिनशासन मे कहा गया है कि जल स्वय जीव रूप है।

५४ इस जलकायिक शस्त्र [हिंसा] पर विचार कर देख।

५५. पुढो सत्थं पवेइयं ।

५६. अदुवा अदिण्णादाणं ।

५७. कप्पइ णे, कप्पइ णे पाउं, अदुवा विभूसाए ।

५८. पुढो सत्थेहिं विउट्टंति ।

५९. एत्थवि तेसिं णो णिकरणाए ।

६०. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा अपरिण्णाया भवंति ।

६१. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा परिण्णाया भवंति ।

६२. तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं उदय-सत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं उदय-सत्थं समारंभावेज्जा, उदय-सत्थं समारंभंते वि अण्णे ण समणुजाणेज्जा ।

६३. जस्सेए उदय-कम्म-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि ।

चउत्थो उद्देसो

६४. से बेमि—

णेव सयं लोगं अब्भाइक्खेज्जा, णेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा ।

जे लोगं अब्भाइक्खइ, से अत्ताणं अब्भाइक्खइ ।

जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोगं अब्भाइक्खइ ।

५५ शस्त्र अलग-अलग निरूपित है।

५६ अन्यथा अदत्तादान है।
[केवल हिंसा ही नही है, अपितु चोरी भी है।]

५७ कुछ लोगो के लिए जल पीने एव नहाने के लिए स्वीकार्य है।

५८ वे पृथक-पृथक शस्त्रो से जलकाय की हिंसा करते हैं।

५९ यहाँ भी उनका कथन प्रामाणिक नही है।

६० शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह जलकायिक वध-बधन अज्ञात है।

६१ शस्त्र समारम्भ न करने वाले के लिए यह जलकायिक वध-बधन ज्ञात है।

६२ उस जलकायिक हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वय जल-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही जल-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही जल-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है।

६३ जिसके लिए ये जल-कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात हैं, वही परिज्ञात-कर्मा [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

६४. वही मैं कहता हूँ—
[अग्निकायिक] लोक को न तो स्वय अस्वीकार करे और न ही अपनी आत्मा को अस्वीकार करे।
जो [अग्निकायिक] लोक को अस्वीकार करता है, वह आत्मा को अस्वीकार करता है, जो आत्मा को अस्वीकार करता है, वह [जलकायिक] लोक को अस्वीकार करता है।

६५ जे दीहलोग-सत्थस्स खेयण्णे, से असत्थस्स खेयण्णे ।
जे असत्थस्स खेयण्णे, से दीहलोग-सत्थस्स खेयण्णे ।

६६ वीरेहिं एय अभिभूय दिट्ठ, संजएहिं सया जत्तेहि सया अप्पमत्तेहिं ।

६७ जे पमत्ते गुणट्ठिए, से हु दंडे पवुच्चइ ।

६८. त परिण्णाय मेहावी इयाणि णो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं ।

६९. लज्जमाणा पुढो पास ।

७०. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा ।

७१. जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहि अगणि-कम्म-समारंभेण अगणि-सत्थं समारंभ-
माणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

७२. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ।

७३. इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउ ।

७४ से सयमेव अगणि-सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा अगणि-सत्थं समारंभावेइ,
अण्णे वा अगणि-सत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ ।

७५. तं से अहियाए, तं से अबोहीए ।

७६ से तं संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

६५ जो अग्नि-शस्त्र को जानने वाला है, वह अशस्त्र/अहिंसा को जानने वाला है। जो अहिंसा को जानने वाला है, वह अग्नि-शस्त्र को जानने वाला है।

६६ सयमी, अप्रमत्त, यमी, वीर-पुरुषो ने इस अग्नि-तत्त्व को सदैव साक्षात् देखा है।

६७ जो प्रमत्त एवं अग्नि-गुणो का अर्थी है, वही हिंसक कहलाता है।

६८. यह जानकर मेधावी पुरुष सोचे कि जो मैंने पहले प्रमादवश किया, वह अब नही करूँगा।

६९. तू उन्हे पृथक-पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख।

७० ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते है — 'हम अनगार है।'

७१. जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा अग्नि-कर्म की क्रिया मे सलग्न होकर अग्निकायिक जीवो की अनेक प्रकार से हिंसा करते है।

७२. निश्चय ही, इस विषय मे भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है।

७३ और इस जीवन के लिए
प्रशसा, सम्मान एव पूजा के लिए,
जन्म, मरण एव मुक्ति के लिए
दु खो से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है।]

७४ वह स्वय ही अग्नि-शस्त्र का प्रयोग करता है, दूसरो से अग्नि-शस्त्र का प्रयोग करवाता है और अग्नि-शस्त्र के प्रयोग करनेवाले का समर्थन करता है।

७५ वह हिंसा अहित के लिए है और वही अबोधि के लिए है।

७६ वह साधु उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है।

७७. सोच्चाभगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ—

एस खलु गंथे,

एस खलु मोहे,

एस खलु मारे,

एस खलु णरए ।

७८. इच्चत्थं गड्ढिए लोए ।

७९ जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहिं अगणि-कम्म-समारंभेण अगणि-सत्थं समारभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

८०. से बेमि—

अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अधमच्छे,

अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,

अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,

अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,

अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,

अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,

अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,

अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,

अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,

अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,

अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,

अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,

अप्पेगे हिययमब्भे, अप्पेगे हिययमच्छे,

अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,

अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,

अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,

अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,

अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,

अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,

अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,

७७. भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगो को यह ज्ञात हो जाता है—
यही [हिंसा] ग्रंथि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है ।

७८ यह आसक्ति ही लोक है ।

७९. जो नाना प्रकार के शस्त्रो द्वारा अग्नि-कर्म की क्रिया मे संलग्न होकर अग्निकायिक जीवो की अनेक प्रकार से हिंसा करता है ।

८० वही मैं कहता हूँ—
कुछ जन्म से अन्धे होते है, तो कुछ छेदन से अन्धे होते है,
कुछ जन्म से पगु होते है, तो कुछ छेदन से पगु होते है,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जघा तक, तो कुछ छेदन से जघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,
कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक, तो कुछ छेदन से हृदय तक,
कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक,
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन से स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से बाहु तक, तो कुछ छेदन से बाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,
कुछ जन्म से अगुली तक, तो कुछ छेदन से अगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,

अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,
अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

८१. अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

८२. से बेमि—
सति पाणा पुढवि-णिस्सिया, तण-णिस्सिया, पत्त-णिस्सिया, कट्ठ-णिस्सिया
गोमय-णिस्सिया, कयवर-णिस्सिया ।

८३ संति संपातिमा पाणा, आहच्च संपयंति य ।
अगणि च खलु पुट्ठा, एगे संघायमावज्जंति ।।
जे तत्थ संघायमावज्जंति, ते तत्थ परियावज्जंति ।
जे तत्थ परियावज्जंति, ते तत्थ उद्दायंति ।।

८४. एत्थ सत्थं समारभमाणस्स इच्चेए आरंभा अपरिण्णाया भवंति ।

८५. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा परिण्णाया भवंति ।

८६. तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं अगणि-सत्थं समारंभेज्जा, नेवण्णेहिं अगणि-सत्थं समारंभावेज्जा, अगणि-सत्थं समारंभमाणे अण्णे न समणुजाणेज्जा ।

कुछ जन्म से ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन से होठ तक,
कुछ जन्म से दात तक, तो कुछ छेदन से दात तक,
कुछ जन्म से जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म से तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म से गले तक, तो कुछ छेदन से गले तक,
कुछ जन्म से गाल तक, तो कुछ छेदन से गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म से नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म से आँख तक, तो कुछ छेदन से आँख तक,
कुछ जन्म से भौंह तक, तो कुछ छेदन से भौंह तक,
कुछ जन्म से ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,
कुछ जन्म से शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

८१. कोई मूर्छित कर दे, कोई वध कर दे ।
[जिस प्रकार मनुष्य के उक्त अवयवो का छेदन-भेदन कष्टकर है, उसी प्रकार अग्निकाय के अवयवो का ।]

८२. वही मै कहता हूँ—
प्राणी पृथ्वी के आश्रित हैं, तृण के आश्रित है, पत्तो के आश्रित है, काष्ठ के आश्रित है, गोबर-कण्डे के आश्रित हैं, कचरे के आश्रित है ।

८३ संपातिम प्राणी अग्नि मे आकर गिरते हैं और अग्नि का स्पर्श पाकर कुछ सकुचित होते है । वे वहाँ परितप्त होते हैं और जो वहाँ परितप्त होते है, वे वहाँ मर जाते है ।

८४ शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह अग्निकायिक वध-बन्धन अज्ञात है ।

८५ शस्त्र-समारम्भ न करने वाले के लिए यह अग्निकायिक वध-बन्धन ज्ञात है ।

८६ उस अग्निकायिक हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वय अग्नि-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही अग्नि-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही अग्नि-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है ।

८७. जस्सेए अगणि-कम्म-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे।

—त्ति बेमि।

पंचमो उद्देसो

८८. तं णो करिस्सामि समुट्ठाए।

८९. मत्ता मइमं अभयं विदित्ता।

९०. तं जे णो करए, एसोवरए, एत्थोवरए एस अणगारेत्ति पवुच्चइ।

९१. जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे।

९२. उड्ढं अहं तिरियं पाईणं पासमाणे रूवाइं पासइ, सुणमाणे सद्दाइं सुणेइ।

९३. उड्ढं अहं तिरियं पाईणं मुच्छमाणे रूवेसु मुच्छइ, सद्देसु आवि।

९४. एस लोए वियाहिए।

९५. एत्थ अगुत्ते अणाणाए।

९६. पुणो-पुणो गुणासाए, वंकसमायारे, पमत्ते अगारमावसे।

८७ जिसके लिए ये अग्नि-कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात है, वही परिज्ञात कर्मा [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

पंचम उद्देशक

८८ मै सयम-मार्ग पर समुपस्थित होकर उस हिंसा को नही करूँगा।

८९ मतिमान पुरुप अभय को जानकर [हिंसा नही करता]

९० जो हिंसा नही करता, वह हिंसा से विरत होता है। जो विरत है, वह अनगार कहा जाता है।

९१ जो गुण (इन्द्रिय-विपय) है, वह आवर्त ससार है और जो आवर्त है, वह गुण है।

९२ ऊर्ध्व, अधो, तिर्यक्, प्राची दिशाओ मे देखता हुआ रूपो को देखता है, सुनता हुआ शब्दो को सुनता है।

९३ ऊर्ध्व, अधो, तिर्यक्, प्राची दिशाओ मे मूर्च्छित होता हुआ रूपो मे मूर्च्छित होता है, शब्दो मे मूर्च्छित होता है।

९४ इसे ससार कहा गया है।

९५ जो इन [इन्द्रिय-विपयो] मे अगुप्त/असयमी है, वह आज्ञा/अनुशासन मे नही है।

९६ वह पुन पुन गुणो मे आसक्त है, छल-कपट करता है, प्रमत्त है, गृहवासी है।

९७. लज्जमाणा पुढो पास ।

९८. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा ।

९९. जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहि वणस्सइ-कम्म-समारभेणं वणस्सइ-सत्थ समारभमाणे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

१०० तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ।

१०१ इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउ ।

१०२. से सयमेव वणस्सइ-सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा वणस्सइ-सत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा वणस्सइ-सत्थ समारभमाणे समणुजाणइ ।

१०३. तं से अहियाए, त से अबोहीए ।

१०४. से त सवुज्झमाणे, आयाणीय समुट्ठाए ।

१०५ सोच्चा भगवओ अणगाराण वा अंतिए इहमेगेसि णाय भवइ—
एस खलु गथे,
एस खलु मोहे,
एस खलु मारे,
एस खलु णरए ।

१०६ इच्चत्थं गड्ढिए लोए ।

१०७ जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइ-कम्म-समारंभेण, वणस्सइ-सत्थं समारभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

९७ तू उन्हे पृथक-पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख ।

९८ ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते है — 'हम अनगार है ।'

९९ जो नाना प्रकार के शस्त्रो द्वारा वनस्पति-कर्म की क्रिया मे सलग्न होकर वनस्पतिकायिक जीवो की अनेक प्रकार से हिंसा करते हैं ।

१०० निश्चय ही, इस विषय मे भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है ।

१०१ और इस जीवन के लिए ही
प्रशसा, सम्मान एवं पूजा के लिए,
जन्म, मरण एव मुक्ति के लिए
दु खो से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-वन्धन की प्रवृत्ति करता है ।]

१०२. वह स्वय ही वनस्पति-शस्त्र का प्रयोग करता है, दूसरो से वनस्पति-शस्त्र का प्रयोग करवाता है और वनस्पति-शस्त्र के प्रयोग करनेवालो का समर्थन करता है ।

१०३ वह हिसा अहित के लिए है ओर वही अवोधि के लिए है ।

१०४ वह साधु उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है ।

१०५ भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगो को यह ज्ञात हो जाता है—
यही [हिंसा] ग्रन्थि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है ।

१०६. यह आसक्ति ही लोक है ।

१०७. जो नाना प्रकार के शस्त्रो द्वारा वनस्पति-कर्म की क्रिया में सलग्न होकर वनस्पतिकायिक जीवो की अनेक प्रकार से हिंसा करता है ।

१०८ से बेमि—

अप्पेगे अधमब्भे, अप्पेगे अधमच्छे,
अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,
अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,
अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,
अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,
अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,
अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,
अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हिययमब्भे अप्पेगे हिययमच्छे,
अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,
अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,
अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,
अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,
अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,
अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,

१०८ वही मै कहता हूँ—

कुछ जन्म से अन्धे होते है, तो कुछ छेदन से अन्धे होते हैं,
कुछ जन्म से पगु होते है, तो कुछ छेदन से पगु होते है,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जंघा तक, तो कुछ छेदन से जंघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,
कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक, तो कुछ छेदन से हृदय तक,
कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक,
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन मे स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से बाहु तक, तो कुछ छेदन मे बाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,
कुछ जन्म से अगुली तक, तो कुछ छेदन से अगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,
कुछ जन्म से ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन से होठ तक,
कुछ जन्म से दात तक, तो कुछ छेदन से दात तक,
कुछ जन्म से जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म से तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म से गले तक, तो कुछ छेदन से गले तक,
कुछ जन्म से गाल तक, तो कुछ छेदन से गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म से नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म से आँख तक, तो कुछ छेदन से आँख तक,
कुछ जन्म मे भौंह तक, तो कुछ छेदन से भौह तक,

अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

१०९. अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

११०. से बेमि—
इमंपि जाइधम्मयं, एयंपि जाइधम्मयं ।
इमंपि वुड्ढिधम्मयं, एयंपि वुड्ढिधम्मयं ।
इमंपि चित्तमंतयं, एयंपि चित्तमंतयं ।
इमंपि छिण्णं मिलाइ, एयंपि छिण्णं मिलाइ ।

इमंपि आहारगं, एयंपि आहारगं ।
इमंपि अणिच्चयं, एयंपि अणिच्चयं ।
इमंपि असासयं, एयंपि असासयं ।
इमंपि चओवचइयं, एयंपि चओवचइयं ।

इमंपि विपरिणामधम्मयं, एयंपि विपरिणामधम्मयं ।

१११. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा अपरिण्णाया भवंति ।

११२. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा परिण्णाया भवंति ।

११३. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वणस्सइ-सत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं वणस्सइ-सत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे वणस्सइ-सत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा ।

११४. जस्सेए वणस्सइ-सत्थ-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि

कुछ जन्म से ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,

कुछ जन्म से शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

१०९. कोई मूर्छित कर दे, कोई वध कर दे।
[जिस प्रकार मनुष्य के उक्त अवययों का छेदन-भेदन कष्टकर है, उसी प्रकार वनस्पतिकाय के अवययों का।]

११० वही मैं कहता हूँ—
यह (मनुष्य) भी जातिधर्मक है, यह (वनस्पति) भी जातिधर्मक है।
यह (मनुष्य) भी वृद्धिधर्मक है, यह (वनस्पति) भी वृद्धिधर्मक है।
यह (मनुष्य) भी चैतन्य है, यह (वनस्पति) भी चैतन्य है।
यह (मनुष्य) भी छिन्न होने पर कुम्हलाता है, यह (वनस्पति) भी छिन्न होने पर कुम्हलाता है।
यह (मनुष्य) भी आहारक है, यह (वनस्पति) भी आहारक है।
यह (मनुष्य) भी अनित्य है यह (वनस्पति) भी अनित्य है।
यह (मनुष्य) भी अशाश्वत है, यह (वनस्पति) भी अशाश्वत है।
यह मनुष्य भी उपचित और अपचित है, यह (वनस्पति) भी उपचित और अपचित है।
यह (मनुष्य) भी विपरिणामीधर्मक है, यह (वनस्पति) भी विपरिणामी-धर्मक है।

१११. शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह वनस्पतिकायिक वध-बन्धन अज्ञात है।

११२ शस्त्र-समारम्भ न करने वाले के लिए यह वनस्पतिकायिक वध-बन्धन ज्ञात है।

११३ उस वनस्पतिकायिक हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वयं वनस्पति-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही वनस्पति-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही वनस्पति-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है।

११४. जिसके लिए ये वनस्पतिकर्म की क्रियाएँ परिज्ञात है, वही परिज्ञात-कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

छट्ठो उद्देसो

११५. से बेमि—

संतिमे तसा पाणा, त जहा—

अंडया पोयया जराउया रसया ससेयया समुच्छिमा उब्भिया ओववाइया।

११६. एस संसारेत्ति पवुच्चइ।

११७. मंदस्स अवियाणओ।

११८ णिज्झाइत्ता पडिलेहित्ता पत्तेयं परिणिव्वाणं।

११९. सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं अस्सायं अपरिणिव्वाणं महब्भयं दुक्खं त्ति बेमि।

१२०. तसंति पाणा पदिसो दिसासु य।

१२१. तत्थ-तत्थ पुढो पास, आउरा परितावेंति।

१२२. संति पाणा पुढो सिया।

१२३ लज्जमाणा पुढो पास।

१२४. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा।

१२५. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकाय-समारंभेणं तसकाय-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

१२६ तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया।

षष्ठ उद्देशक

११५ वही मैं कहता हूँ—
ये त्रस प्राणी हैं जैसे कि—
अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, सस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज/भूमिज और औपपातिक ।

११६ यह [त्रसलोक] ससार है, ऐसा कहा जाता है ।

११७ यह मंद और अज्ञानी के लिए होता है ।

११८ चिन्तन एव परिशीलन करके देखे कि प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है ।

११६ सभी प्राणियो सभी भूतो, सभी जीवो और सभी सत्त्वो के लिए अशाता और अपरिनिर्वाण (दु ख) भयकर दु ख रूप है ।

१२० प्राणी प्रत्येक दिशा और विदिशा में त्रास/दु ख पाते है ।

१२१ तू यत्र-तत्र पृथक-पृथक देख ! आतुर मनुष्य दु ख देते है ।

१२२ प्राणी पृथक-पृथक है ।

१२३ तू उन्हे पृथक पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख ।

१२४ ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते है— 'हम अनगार है ।',

१२५ जो नाना प्रकार के शस्त्रो द्वारा त्रस-कर्म की क्रिया मे सलग्न होकर त्रसकायिक जीवो की अनेक प्रकार से हिंसा करता है ।

१२६ निश्चय ही, इस विषय मे भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है ।

१२७. इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउं ।

१२८. से सयमेव तसकाय-सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा तसकाय-सत्थं समारंभावेइ,
अण्णे वा तसकाय-सत्थं समारभमाणे समणुजाणइ ।

१२९. तं से अहियाए, तं से अबोहीए ।

१३०. से त संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

१३१. सोच्चा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवइ—
एस खलु गंथे,
एस खलु मोहे,
एस खलु मारे,
एस खलु णरए ।

१३२. इच्चत्थं गड्ढिए लोए ।

१३३. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकाय-समारंभेणं तसकाय-सत्थं समारंभमाणे
अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

१३४. से बेमि—
अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे,
अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,
अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,
अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,

१२७ और इस जीवन के लिए
प्रशसा, सम्मान एव पूजा के लिए
जन्म, मरण एव मुक्ति के लिए
दु खो से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है ।]

१२८ वह स्वयं ही त्रस-शस्त्र का उपयोग करता है, दूसरो से त्रस-शस्त्र का उपयोग करवाता है और त्रस-शस्त्र के उपयोग करने वालो का समर्थन करता है।

१२९ वह हिंसा अहित के लिए है और वही अबोधि के लिए है।

१३०. वह (साधु) उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है।

१३१. भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगो को यह ज्ञात हो जाता है—
यही (हिंसा) ग्रन्थि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है।

१३२ यह आसक्ति ही लोक है।

१३३ जो नाना प्रकार के शस्त्रो द्वारा त्रस-कर्म की क्रिया मे सलग्न होकर त्रसकायिक जीवो की अनेक प्रकार से हिंसा करते हैं।

१३४ वही मै कहता हूँ—
कुछ जन्म से अन्धे होते है, तो कुछ छेदन से अन्धे होते है।
कुछ जन्म से पगु होते हैं, तो कुछ छेदन से पगु होते है,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जघा तक, तो कुछ छेदन से जघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,

अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,
अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,
अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,
अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हिययमब्भे, अप्पेगे हिययमच्छे,
अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,
अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,
अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,
अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,
अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,
अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,
अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

१३५. अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक तो कुछ छेदन से हृदय तक,
कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक,
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन से स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से बाहु तक, तो कुछ छेदन से बाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,
कुछ जन्म से अगुली तक, तो कुछ छेदन से अगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,
कुछ जन्म से ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन से होठ तक,
कुछ जन्म से दात तक, तो कुछ छेदन से दात तक,
कुछ जन्म से जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म से तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म से गले तक, तो कुछ छेदन से गले तक,
कुछ जन्म से गाल तक, तो कुछ छेदन से गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म से नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म से आँख तक, तो कुछ छेदन से आँख तक,
कुछ जन्म से भौंह तक, तो कुछ छेदन से भौंह तक,
कुछ जन्म से ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,
कुछ जन्म से शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

१३५ कोई मूर्छित कर दे, कोई वध कर दे ।

[जिस प्रकार मनुष्य के उक्त अवयवो का छेदन-भेदन कष्टकर है, उसी प्रकार अग्निकाय के अवयवो का ।]

१३६. से बेमि—

अप्पेगे अच्चाए वहंति, अप्पेगे अजिणाए वहंति,

अप्पेगे मसाए वहंति, अप्पेगे सोणियाए वहंति,
अप्पेगे हिययाए वहंति, अप्पेगे पित्ताए वहंति,
अप्पेगे वसाए वहंति, अप्पेगे पिच्छाए वहंति,
अप्पेगे पुच्छाए वहंति, अप्पेगे बालाए वहंति,
अप्पेगे सिंगाए वहंति, अप्पेगे विसाणाए वहंति,
अप्पेगे दंताए वहंति, अप्पेगे दाढाए वहंति,
अप्पेगे णहाए वहंति, अप्पेगे ण्हारुणीए वहंति,
अप्पेगे अट्ठीए वहंति, अप्पेगे अट्ठिमिंजाए वहंति,
अप्पेगे अट्ठाए वहंति, अप्पेगे अणट्ठाए वहंति,
अप्पेगे हिंसिंसु मेत्ति वा वहंति,
अप्पेगे हिंसंति मेत्ति वा वहंति,
अप्पेगे हिंसिस्संति मेत्ति वा वहंति,

१३७. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा अपरिण्णाया भवंति ।

१३८. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेए आरंभा परिण्णाया भवंति ।

१३९. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं तसकाय-सत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं तसकाय-सत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे तसकाय-सत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा ।

१४०. जस्सेए तसकाय-सत्थ-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि ।

१३६ वही मै कहता हूँ—

कुछ अर्चना [देह-अलकरण/मन्त्र-सिद्धि/यज्ञ-याग] के लिए वध करते है,
कुछ चर्म के लिए वध करते हैं।
कुछ मास के लिए वध करते है, कुछ रक्त के लिए वध करते है।
कुछ हृदय/कलेजे के लिए वध करते हैं, कुछ पित्त के लिए वध करते हैं।
कुछ चर्बी के लिए वध करते है, कुछ पख के लिए वध करते है।
कुछ पूंछ के लिए वध करते हैं, कुछ बाल के लिए वध करते है।
कुछ सीग के लिए वध करते है कुछ विषाण/हस्तिदत के लिए वध करते हैं।
कुछ दात के लिए वध करते हैं, कुछ दाढ के लिए वध करते है।
कुछ नख के लिए वध करते है कुछ स्नायु के लिए वध करते हैं।
कुछ अस्थि के लिए वध करते है, कुछ अस्थिमज्जा के लिए वध करते हैं।
कुछ प्रयोजन से वध करते हैं, कुछ निष्प्रयोजन वध करते है।
या कुछ 'मुझे मारा' इसलिए वध करते हैं,
या कुछ मुझे मारते हैं' इसलिए वध करते है,
या कुछ 'मुझे मारेगे' इसलिए वध करते हैं।

१३७. शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह त्रसकायिक वध-बधन अज्ञात है।

१३८. शस्त्र समारम्भ न करने वाले के लिए यह त्रसकायिक वध-बंधन ज्ञात है।

१३९ उस त्रसकायिक हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वय त्रस-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही त्रस-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही त्रस-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है।

१४०. जिसके लिए ये त्रस-कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात हैं, वही परिज्ञात-कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

सत्तमो उद्देसो

१४१. पहू एजस्स दुगुंछणाए ।

१४२. आयकदंसी अहियं ति णच्चा ।

१४३. जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ ।
जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ ।

१४४. एयं तुलमण्णेसिं ।

१४५. इह संतिगया दविया, णावकंखंति वीजिउं ।

१४६. लज्जमाणा पुढो पास ।

१४७. 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा ।

१४८. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्म-समारंभेणं वाउ-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ ।

१४९. तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया ।

१५०. इमस्स चेव जीवियस्स,
परिवंदण-माणण-पूयणाए,
जाई-मरण-मोयणाए,
दुक्खपडिघायहेउं ।

१५१ से सयमेव वाउ-सत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा वाउ-सत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा वाउ-सत्थं समारंभंते समणुजाणइ ।

सप्तम उद्देशक

१४१ वह वायुकाय की हिंसा से निवृत्त होने मे समर्थ है।

१४२ आतकदर्शी पुरुष हिंसा को अहित रूप जानकर छोडता है।

१४३ जो अध्यात्म को जानता है, वह बाह्य को जानता है।
जो बाह्य को जानता है, वह अध्यात्म को जानता है।

१४४ इस बात को तुला पर तौले।

१४५ इस [अर्हत्-शासन] मे [मुनि] शान्त और करुणाशील होते है, अतः वे वीजन की आकाक्षा नही करते।

१४६ तू उन्हे पृथक-पृथक लज्जमान/हीनभावयुक्त देख।

१४७ ऐसे कितने ही भिक्षुक स्वाभिमानपूर्वक कहते है — 'हम अनगार है।'

१४८. जो नाना प्रकार के शस्त्रो द्वारा वायु-कर्म की क्रिया मे संलग्न होकर वायुकायिक जीवो की अनेक प्रकार से हिंसा करता है।

१४९ निश्चय ही, इस विषय मे भगवान् ने प्रज्ञापूर्वक समझाया है।

१५० और इस जीवन के लिए
प्रशसा, सम्मान एव पूजा के लिए,
जन्म, मरण एव मुक्ति के लिए
दु खो से छूटने के लिए
[प्राणी कर्म-बन्धन की प्रवृत्ति करता है।]

१५१ वह स्वय ही वायु-शस्त्र का प्रयोग करता है, दूसरो से वायु-शस्त्र का प्रयोग करवाता है और वायु-शस्त्र के प्रयोग करने वाल का समर्थन करता है।

१५२. तं से अहियाए, तं से अबोहीए।

१५३. से तं सबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए।

१५४. सोच्चा भगवओ अणगाराण वा अतिए इहमेगेसिं णाय भवइ—
एस खलु गथे,
एस खलु मोहे,
एस खलु मारे,
एस खलु णरए।

१५५. इच्चत्थं गड्ढिए लोए।

१५६. जमिण विरूवरूवेहि सत्थेहि वाउकम्म-समारंभेण, वाउ-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

१५७. से वेमि—
अप्पेगे अधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे,
अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,
अप्पेगे जघमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,
अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,
अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,
अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उयरमब्भे, अप्पेगे उयरमच्छे,
अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्ठमब्भे, अप्पेगे पिट्ठमच्छे,
अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हिययमब्भे. अप्पेगे हिययमच्छे,
अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खधमच्छे,
अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,

१५२. वह हिंसा अहित के लिए है और वही अबोधि के लिए है।

१५३ वह साधु उस हिंसा को जानता हुआ ग्राह्य-मार्ग पर उपस्थित होता है।

१५४ भगवान् या अनगार से सुनकर कुछ लोगों को यह ज्ञात हो जाता है—
यही [हिंसा] ग्रन्थि है,
यही मोह है,
यही मृत्यु है,
यही नरक है।

१५५ यह आसक्ति ही लोक है।

१५६ जो नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा वायु-कर्म की क्रिया में संलग्न होकर वायुकायिक जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है।

१५७ वही मैं कहता हूँ—
कुछ जन्म से अन्धे होते हैं, तो कुछ छेदन से अन्धे होते हैं,
कुछ जन्म से पगु होते हैं, तो कुछ छेदन से पगु होते हैं,
कुछ जन्म से घुटने तक, तो कुछ छेदन से घुटने तक,
कुछ जन्म से जघा तक, तो कुछ छेदन से जघा तक,
कुछ जन्म से जानु तक, तो कुछ छेदन से जानु तक,
कुछ जन्म से उरु तक, तो कुछ छेदन से उरु तक,
कुछ जन्म से कटि तक, तो कुछ छेदन से कटि तक,
कुछ जन्म से नाभि तक, तो कुछ छेदन से नाभि तक,
कुछ जन्म से उदर तक, तो कुछ छेदन से उदर तक,
कुछ जन्म से पसली तक, तो कुछ छेदन से पसली तक,
कुछ जन्म से पीठ तक, तो कुछ छेदन से पीठ तक,
कुछ जन्म से छाती तक, तो कुछ छेदन से छाती तक,
कुछ जन्म से हृदय तक, तो कुछ छेदन से हृदय तक,
कुछ जन्म से स्तन तक, तो कुछ छेदन से स्तन तक
कुछ जन्म से स्कन्ध तक, तो कुछ छेदन से स्कन्ध तक,
कुछ जन्म से बाहु तक, तो कुछ छेदन से बाहु तक,
कुछ जन्म से हाथ तक, तो कुछ छेदन से हाथ तक,

अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अगुलिमच्छे,
अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,
अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,
अप्पेगे हणुयमब्भे, अप्पेगे हणुयमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,
अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,

१५८. अप्पेगे सपमारए, अप्पेगे उद्दवए ।

१५९. से बेमि—
सति संपातिमा पाणा, आहच्च सपयति य ।
फरिस च खलु पुट्ठा, एगे सघायमावज्जति ।।
जे तत्थ संघायमावज्जति, ते तत्थ परियावज्जति ।
जे तत्थ परियावज्जति, ते तत्थ उद्दायति ।।

१६०. एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेए आरभा अपरिण्णाया भवति ।

१६१. एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चए आरभा परिण्णाया भवंति ।

१६२. त परिण्णाय मेहावी णेव सय वाउ-सत्थ समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं वाउ-सत्थं समारभावेज्जा, णेवण्णे वाउ-सत्थ समारभते समणुजाणेज्जा ।

कुछ जन्म से अंगुली तक, तो कुछ छेदन से अंगुली तक,
कुछ जन्म से नख तक, तो कुछ छेदन से नख तक,
कुछ जन्म से गर्दन तक, तो कुछ छेदन से गर्दन तक,
कुछ जन्म से ठुड्डी तक, तो कुछ छेदन से ठुड्डी तक,
कुछ जन्म से होठ तक, तो कुछ छेदन मे होठ तक,
कुछ जन्म से दात तक, तो कुछ छेदन मे दात तक,
कुछ जन्म मे जीभ तक, तो कुछ छेदन से जीभ तक,
कुछ जन्म से तालु तक, तो कुछ छेदन से तालु तक,
कुछ जन्म से गले तक, तो कुछ छेदन से गले तक,
कुछ जन्म से गाल तक, तो कुछ छेदन से गाल तक,
कुछ जन्म से कान तक, तो कुछ छेदन से कान तक,
कुछ जन्म से नाक तक, तो कुछ छेदन से नाक तक,
कुछ जन्म से आँख तक, तो कुछ छेदन से आँख तक,
कुछ जन्म से भौह तक, तो कुछ छेदन मे भौह तक
कुछ जन्म से ललाट तक, तो कुछ छेदन से ललाट तक,
कुछ जन्म से शिर तक, तो कुछ छेदन से शिर तक,

१५८ कोई मूर्छित कर दे, कोई वध कर दे।
[जिस प्रकार मनुष्य के उक्त अवयवो का छेदन-भेदन कष्टकर है, उसी प्रकार अग्निकाय के अवयवो का।]

१५९ वही मै कहता हूँ, सपातिम प्राणी नीचे आकर गिरते है और वायु का स्पर्श पाकर कुछ सकुचित होते है। जो यहाँ सकुचित होते है, वे वहाँ परितप्त होते है और जो वहाँ परितप्त होते है, ये वहाँ मर जाते है।

१६० शस्त्र-समारम्भ करने वाले के लिए यह वायुकायिक वध-वन्धन अज्ञात है।

१६१. शस्त्र-समारम्भ न करने वाले के लिए यह वायुकायिक वध-वन्धन ज्ञात है।

१६२ उस वायुकायिक हिसा को जानकर मेधावी न तो स्वय वायु-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही वायु-शस्त्र का उपयोग करवाता है और न ही वायु-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है।

१६३. जस्सेए वाउ-सत्थ-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि ।

१६४. एत्थ पि जाणे उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति आरंभमाणा विणयं वयंति ।

१६५. छंदोवणीया अज्झोववण्णा ।

१६६. आरंभसत्ता पकरेंति संगं ।

१६७. से वसुमं सव्व-समण्णागय-पण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं ।

१६८. तं णो अण्णेसिं ।

१६९. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं छज्जीव-णिकाय-सत्थं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं छज्जीव-णिकाय-सत्थं समारंभावेज्जा, णेवण्णे छज्जीव-णिकाय-सत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा ।

१७०. जस्सेए छज्जीव-णिकाय-सत्थ-समारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णाय-कम्मे ।

—त्ति बेमि ।

१६३ जिसके लिए ये वायु-कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात है, वही परिज्ञात-कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

१६४. यहाँ समझे कि वे आबद्ध है, जो आचरण का पालन नही करते, हिंसा करते हुए भी विनय/अहिंसा का उपदेश देते है।

१६५ वे स्वच्छन्दी और विषय-गृद्ध है।

१६६ हिंसा मे आसक्त पुरुष संग/बन्धन बढाते है।

१६७. अहिंसक सबुद्ध-पुरुष के लिए प्रज्ञा से पापकर्म अकरणीय है।

१६८ उसका अन्वेषण न करे।

१६९ उस छह जीवनिकायिक-हिंसा को जानकर मेधावी न तो स्वयं छह जीव-निकाय-शस्त्र का उपयोग करता है, न ही छह जीवनिकाय-शस्त्र का उपयोग करवाता है, न ही छह जीवनिकाय-शस्त्र के उपयोग करने वाले का समर्थन करता है।

१७० जिसके लिए ये छह जीवनिकाय-कर्म की क्रियाएँ परिज्ञात है, वही परिज्ञात-कर्मी [हिंसा-त्यागी] मुनि है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

बीअं अज्झयणं

लोग-विजओ

द्वितीय अध्ययन

लोक-विजय

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'लोक-विजय' है। यह मानव-मन के द्वन्द्वों एव आत्म स्वीकृतियों का दर्पण है। साधक आत्मपूर्णता के लिए समर्पित जीवन का एक नाम है। सम्भव है मन की हार और जीत के बीच वह भूल जाये। महावीर अनुत्तरयोगी आत्मदर्शी थे। साधकों के लिए उनका मार्ग-दर्शन उपादेय है। इस अध्याय मे साधक की हर सम्भावित फिसलन का रेखाङ्कन है। साधना के राज-मार्ग पर बढे पाँव शिथिल या स्खलित न हो जाय, इसके लिए हर पहर सचेत रहना साधक का धर्म है।

प्रस्तुत अध्याय अन्तरङ्ग एव बहिरङ्ग का स्वाध्याय है। असयम से निवृत्ति और सयम से प्रवृत्ति—यही इस अध्याय के वर्ण-शरीर की अर्थ-चेतना है। निजा-नन्द-रसलीनता ही साधक का सच्चा व्यक्तित्व है। इस आत्मरमणता का ही दूसरा नाम ब्रह्मचर्य है।

साधना के लिए चाहिए ऊर्जा। ऊर्जा सामर्थ्य की ही मुखछवि है। शरीर या इन्द्रियों की ऊर्जा जर्जरता की ओर यात्राशील है। इसे नव्य-भाव अर्थवत्ता के साथ नियोजित एव प्रयुक्त कर लेने मे इसकी महत् उपादेयता है। दीपक बुझने से पहले उसकी ज्योति का उपयोग करना ही प्रज्ञा-कौशल है। मृत्यु के बाद कैसे करेंगे मृत्युजयता!

साधक अहर्निश साधना के लिए ही कटिबद्ध होता है। उसके लिए समग्रता मे बल-पराक्रम का प्रयोग करना साधक की पहचान है। अत साधक को विराम और विश्राम कैसे शोभा देगा? प्रस्थान-केन्द्र से प्रस्थित होने के बाद उसका सम्मोहन और आकर्षण विसर्जित करना अनिवार्य है।

वान्त का आकर्षण पराजय का उत्सव है। पूर्व सम्बन्धों का स्मरण कर उनके लिए मुह से लार टपकाना श्रमण-धर्म की सीमा का अतिक्रमण है। यह तो व्यक्त प्रमत्तता एव इन्द्रिय-विलासिता का पुन अङ्गीकरण है। ममत्व से मुक्त होना

ही मुनित्व की प्रतिष्ठा है। लालसा का प्रत्याशी तो पुन ससार का ही आह्वान कर रहा है। स्वय के धैर्य पर सुस्थित होना अनिवार्य है। साधक को चाहिये कि वह तृण-खण्ड की भाँति कामना के प्रवाह मे प्रवाहित होने से स्वय को बचाये। प्रस्तुत अध्याय साधक को उद्बुद्ध करता है शाश्वत के लिए।

ससार नदी-नाव का सयोग है। अत किसके प्रति आसक्ति और किसके प्रति अह-भूमिका ! योनि-योनि मे निवास करने के बाद कैसा जातिमद, सम्बन्धों का कैसा सम्मोहन ? जब शरीर भी अपना नही है, तो किसका परिग्रह और किसके प्रति परिग्रह-बुद्धि ? काम-क्रीडा आत्मरजन है या मनोरजन ? सयम-पथ पर पाँव वर्धमान होने के बाद असयम का आलिगन—क्या यही साधक की साध्यनिष्ठा है ?

जीवन स्वप्नवत् है। सारे सम्बन्ध सायोगिक हैं। माता-पिता हमारे अवतरण मे सहायक के अतिरिक्त और क्या हो सकते है ? पति और पत्नी विपरीत के आकर्षण मे मात्र एक प्रगाढता है। बच्चे पख लगते ही नीड छोडकर उडने वाले पछी हैं। बुढापा आयु का बन्दीगृह है। यह मर्त्य शरीर हाड-माँस का पिजरा है। मनुष्य तो निपट अकेला है। फिर धर्म-पथ से स्खलन कैसा ? धर्म आत्म-आश्रित है, शेष लोकाचार है, धूप-छाँह-सा आँख-मिचौनी का खेल।

सर्वदर्शी महावीर साधक की हर सभावना पर पैनी दृष्टि रखे हुए है। कर्तव्य-पथ पर चलने का सकल्प करने के बाद पाँवों का मोच खाना सकल्पों का शैथिल्य है। साधक को चाहिये कि वह आठों याम अप्रमत्ता, आत्म-समानता, अनासक्ति, तटस्थता और निष्कामवृत्ति का पचामृत पिये-पिलाये। इसी से प्राप्त होता है कैवल्य-लाभ, सिद्धालय का उत्तराधिकार।

साधक आन्तरिक शत्रुओं को परास्त कर विजय का स्वर्ण पदक प्राप्त करता है। यह आत्म-विजय सत्यत लोक-विजय है। सच्ची वीरता अन्य को नहीं अनन्य अपने आपको जीतने मे है। देहगत और आत्मगत शत्रुओ पर विजयश्री प्राप्त करने वाला ही जिन है, आत्म-शास्ता है, लोक-विजेता है।

पढमो उद्देसो

१. जे गुणे से मूलट्ठाणे,
जे मूलट्ठाणे से गुणे ।

२. इय से गुणट्ठी महया परियावेणं पुणो पुणो रए पमत्ते तं जहा—माया मे, पिया मे, भाया मे, भइणी मे, भज्जा मे, पुत्ता मे, धूया मे, सुण्हा मे, सहि-सयण-सगथ-सथुया मे, विवित्तोवगरण-परियट्टण-भोयण-अच्छायण मे, इच्चत्थं गड्ढए लोए वसे पमत्ते ।

३. अहो य राओ य परियप्पमाणे, कालाकालसमुट्ठाई,
सजोगट्ठी, अट्ठालोभी, आलुपे सहसाकारे,
विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो-पुणो ।

४. अप्प च खलु आउय इहमेगेसि माणवाणं त जहा—
सोय-परिण्णाणेहि परिहायमाणेहि,
चक्खु-परिण्णाणेहि परिहायमाणेहि,
घाण-परिण्णाणेहि परिहायमाणेहि,
रसणा-परिण्णाणेहि परिहायमाणेहि,
फास-परिण्णाणेहि परिहायमाणेहि ।

५. अभिक्कतं च खलु वय संपेहाए, तओ से एगया मूढभावं जणयंति ।

प्रथम उद्देशक

१. जो गुण है, वह मूल स्थान है।
जो मूल स्थान है, वह गुण है।

२ इस प्रकार वह गुणार्थी [विषयासक्त] महत् परिताप से पुन पुन प्रमाद मे रत होता है। जैसे कि — मेरी माता, मेरा पिता, मेरा भाई, मेरी बहिन, मेरी पत्नी, मेरा पुत्र, मेरी पुत्री, मेरी पुत्रवधू, मेरा मित्र, स्वजन, कुटुम्बी, परिचित, मेरे विविध उपकरण, परिवर्तन/धन-सम्पत्ति का आदान-प्रदान, भोजन, वस्त्र — इनमे आसक्त-पुरुष प्रमत्त होकर ससार मे वास करता है।

३ इस प्रकार रात-दिन संतप्त होता हुआ काल या अकाल मे विचरण करने वाला, सयोग-अर्थी/परिग्रही, अर्थ-लोभी, ठगी, दु साहसी, दत्तचित्त पुरुप पुन पुन शस्त्र/सहार करता है।

४ निश्चय ही इस [ससार] मे कुछ मनुष्यो का आयुष्य अल्प है। जैसे कि—
श्रोत्र-परिज्ञान से परिहीन होने पर,
चक्षु-परिज्ञान से परिहीन होने पर,
घ्राण-परिज्ञान से परिहीन होने पर,
रसना-परिज्ञान से परिहीन होने पर,
स्पर्श-परिज्ञान से परिहीन होने पर,

५. निश्चय ही इनसे अभिक्रान्त आयुष्य का संप्रेक्षण कर वे कभी मूढभाव को प्राप्त करते हैं।

६. जेहिं वा सद्धि सवसइ ते वि ण एगया णियगा त पुव्वि परिवयति, सो वि ते णियगे पच्छा परिवएज्जा ।

७. णाल ते तव ताणाए वा, सरणाए वा ।
तुम पि तेसि णाल ताणाए वा, सरणाए वा ।

८. से ण हासाए, ण किड्डाए, ण रईए, ण विभूसाए ।

९. इच्चेव समुट्ठिए अहोविहाराए ।

१०. अतर च खलु इम सपेहाए—धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए ।

११. वयो अच्चेइ जोव्वण व ।

१२. जीविए इह जे पमत्ता, से हंता छेत्ता भेत्ता लुपित्ता विलुपिता उद्दवित्ता उत्तासइत्ता ।

१३. अकडं करिस्सामित्ति मण्णमाणे ।

१४. जेहिं वा सद्धि सवसइ ते वा ण एगया णियगा तं पुव्वि पोसेंति, सो वा ते णियगे पच्छा पोसेज्जा ।

१५. णालं ते तव ताणाए वा, सरणाए वा ।
तुमंपि तेसिं णाल ताणाए वा, सरणाए वा ।

१६. उवाइय-सेसेण वा सनिहि-सनिचओ किज्जइ, इहमेगेसिं असंजयाणं भोयणाए ।

१७. तओ से एगया रोग-समुप्पाया समुप्पज्जंति ।

६ जिनके साथ रहता है-वे स्वजन ही सबसे पहले निन्दा करते है। बाद मे वह उन स्वजनो की निन्दा करता है।

७ वे तुम्हारे लिए त्राण या शरण देने मे समर्थ नही है। तुम भी उनके लिए त्राण या शरण देने मे समर्थ नही हो।

८ न तो वह हास्य के लिए है, न क्रीडा के लिए, न रति के लिए और न ही शृङ्गार के लिए ।

९ अत पुरुष अहोविहार/सयम-साधना के लिए समुपस्थित हो जाए।

१०. इस अन्तर को देखकर धीर-पुरुष मुहूर्तभर भी प्रमाद न करे।

११ वय और यौवन बीत रहा है।

१२ जो इस ससार मे जीवन के प्रति प्रमत्त है, वह हनन, छेदन, भेदन, चोरी, डकैती, उपद्रव एव अतित्रास करनेवाला होता है।

१३ मैं वह करूँगा, जो किसी ने न किया हो, ऐसा मानता हुआ वह हिसा करता है।

१४ जिनके साथ रहता है, वे स्वजन ही एकदा पोषण करते है। बाद मे वह उन स्वजनो का पोषण करता है।

१५ वे तुम्हारे लिए त्राण या शरण देने मे समर्थ नही है। तुम भी उनके लिए त्राण या शरण देने मे समर्थ नही हो।

१६ इस ससार मे उन असयत-पुरुषो के भोजन के लिए उपभुक्त सामग्री मे से सग्रह और सचय किया जाता है।

१७ पश्चात् उनके शरीर मे कभी रोग के उत्पाद/उपद्रव उत्पन्न हो जाते है।

१८. जेहिं वा सद्धि सवसइ ते वा ण एगया णियगा तं पुव्वि परिहरंति, सो वा ते णियगे पच्छा परिहरेज्जा ।

१९. णाल ते तव ताणाए वा, सरणाए वा ।
तुमपि तेसिं णाल ताणाए वा, सरणाए वा ।

२०. जाणित्तु दुक्ख पत्तेय साय, अणभिक्कंतं च खलु वय सपेहाए, खण जाणाहि पंडिए !

२१. जाव सोय-परिण्णाणा अपरिहीणा,
जाव णेत्त-परिण्णाणा अपरिहीणा,
जाव घाण-परिण्णाणा अपरिहीणा,
जाव जीह-परिण्णाणा अपरिहीणा,
जाव फास-परिण्णाणा अपरिहीणा ।

२२. इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं पण्णाणेहि अपरिहीणेहिं आयट्ठ सम्मं समणुवासिज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

२३. अरइं आउट्टे से मेहावी खणसि मुक्के ।

२४. अणाणाए पुट्ठा वि एगे णियट्टंति, मंदा मोहेण पाउडा ।

२५. 'अगरिग्गहा भविस्सामो' समुट्ठाए, लद्धे कामेहिगाहति ।

२६. अणाणाए मुणिणो पडिलेहति ।

१८ जिनके साथ रहता है, वे स्वजन ही कभी छोड देते हैं। बाद मे वह उन स्वजनो को छोड देता है।

१९ वे तुम्हारे लिए त्राण या शरण देने मे समर्थ नही है। तुम भी उनके लिए त्राण या शरण देने मे समर्थ नही हो।

२० हे पडित! तू प्रत्येक सुख एव दुःख को जानकर, अवस्था को अनतिक्रान्त देखकर क्षण को पहचान।

२१ जब तक श्रोत्र-परिज्ञान पूर्ण है,
जब तक नेत्र-परिज्ञान पूर्ण है,
जब तक घ्राण-परिज्ञान पूर्ण है,
जब तक जीभ-परिज्ञान पूर्ण है,
जब तक स्पर्श-परिज्ञान पूर्ण है,

२२. [तब तक] विविध प्रज्ञापूर्ण इस आत्मा के लिए सम्यक् अनुशीलन करे।

—ऐसा मै कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

२३ जो अरति का निवर्तन करता है, वह मेधावी क्षणभर मे मुक्त हो जाता है।

२४ कोई मदमति-पुरुष मोह से आवृत होकर, आज्ञा के विपरीत चलकर, परीषह-स्पृष्ट होता हुआ निवर्तन करता है

२५. 'हम भविष्य मे अपरिग्रही होगे' कुछ यह विचार करके प्राप्त कामो को ग्रहण करते हैं।

२६ अनाज्ञा से मुनि [मोह का] प्रतिलेख/शोधन करते है।

२७. इत्थ मोहे पुणो-पुणो सण्णा णो हव्वाए णो पाराए ।

२८. विमुक्का हु ते जणा, जे जणा पारगामिणो ।

२६. लोभं अलोभेण दुगंछमाणे, लद्धे कामे नाभिगाहइ ।

३०. विणइत्तु लोभं निक्खम्म, एस अकम्मे जाणइ-पासइ ।

३१. पडिलेहाए णावकखइ एस अणगारेत्ति पवुच्चइ ।

३२. अहो य राओ य परितप्पमाणे, कालाकालसमुट्ठाई,
सजोगट्ठी अट्ठालोभी, आलुंपे सहसाकारे,
विणिविट्ठचित्ते, इत्थ सत्थे पुणो-पुणो ।

३३. से आय-वले, से णाइ-वले, से मित्त-वले, से पेच्च-वले, से देव-वले, से राय-वले, से चोर-वले, से अइहि-वले, से किवण-वले, से समण-वले, इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं कज्जेहिं दड-समायाणं ।

३४. संपेहाए भया कज्जइ पाव-मोक्खोत्ति मण्णमाणे, अदुआ आसंसाए ।

३५. त परिण्णाय मेहावी णेव सय एएहिं कज्जेहिं दंड समारभेज्जा, णेवण्णं एएहिं कज्जेहिं दड समारभावेज्जा, णेवण्ण एएहिं कज्जेहिं दड समारभतं समणुजाणेज्जा ।

३६. एस मग्गे आरिएहिं पवेइए ।

३७. जहेत्थ कुसले णोवलिंपिज्जासि ।

—त्ति बेमि

२७ इस प्रकार बारम्बार मोह मे आसन्न पुरुष न इस पार है, न उस पार।

२८. वे ही मनुष्य विमुक्त हैं, जो मनुष्य पारगामी है।

२९ वे लोभ को अलोभ से परित्यक्त करते हुए प्राप्त कामो का अवगाहन नही करते।

३०. जो लोभ को छोडकर प्रव्रजित होता है, वह अकर्म को जानता है, देखता है।

३१. जो प्रतिलेख की आकाक्षा नही करता, वह अनगार कहलाता है।

३२. रात-दिन संतप्त, कालाकाल-विहारी, सयोग-अर्थी (परिग्रही), अर्थलोभी, ठगी, दु साहसी, दत्तचित्त पुरुष पुन पुन शस्त्र/सहार करता है।

३३ वह आत्मबल, वह ज्ञातिबल, वह मित्र-बल, वह प्रैत्य-बल, वह देव-बल, वह राज-बल, वह चोर-बल, वह अतिथि-बल, वह कृपण-बल, वह श्रमण-बल के लिए इन विविध प्रकार के कार्यो से दंड-समादान/हिंसा करता है।

३४. पुरुष संप्रेक्षा [भविष्य की लालसा] से, भय से हिंसा करता है। स्वय को पाप-मुक्त मानता हुआ आशा से हिंसा करता है।

३५. उसे जानकर मेधावी पुरुष न तो स्वयं इन कार्यों/उद्देश्यो से हिंसा करे, न ही अन्य कार्यों से हिंसा करवाए और न ही अन्य द्वारा किये जाने वाले इन कार्यो से हिंसा करनेवाले का समर्थन करे।

३६. यह मार्ग आर्यों द्वारा प्रवेदित है।

३७. इसलिए कुशल-पुरुष लिप्त न हो।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तीश्रो उद्देसो

३८. से असइं उच्चागोए, असइ णीयागोए।

३९. णो हीणे, णो अइरित्ते, णो पीहए।

४०. इय सखाय के गोयावाई? के माणावाई? कंसि वा एगे गिज्झे?

४१. तम्हा पडिए णो हरिसे, णो कुप्पे।

४२. भूएहिं जाण पडिलेह सायं।

४३. समिए एयाणुपस्सी त जहा—अंधत्त वहिरत्तं मूयत्त काणत्त कुंटत्तं खुज्जत्त वडभत्तं सामत्त सवलत्त।

४४. सहपमाएण अणेगरूवाओ जोणीओ सधायइ विरूवरूवे फासे पडिसंवेयइ।

४५. से अबुज्झमाणे हओवहए जाइ-मरणं अणुपरियट्टमाणे।

४६. जीवियं पुढो पिय इहमेगेसिं माणवाण, खेत्त-वत्थु ममायमाणाणं।

४७. आरत्तं विरत्तं मणिकुंडल सह हिरण्णेण, इत्थियाओ परिगिज्झ तत्थेव रत्ता।

४८. ण इत्थ तवो वा, दमो वा, णियमो वा दिस्सइ।

४९. संपुण्ण वाले जीविउकामे लालप्पमाणे मूढे विप्परियासमुवेइ।

तृतीय उद्देशक

३८ वह अनेक बार उच्च गोत्र और अनेक बार नीच गोत्र मे उत्पन्न हुआ है।

३९ न हीन है, न अतिरिक्त/उच्च। इनमे से किसी की भी स्पृहा न करे।

४० ऐसा समझ लेने पर कौन गोत्रवादी, कौन मानवादी और कौन किसमे गृद्ध ?

४१ इसलिए पंडित न हर्ष करे, न क्रोध करे।

४२ प्राणियो को जानो और उनकी शाता को पहचानो।

४३ इनको समतापूर्वक देखो, जैसेकि अंधापन, बहरापन, गूंगापन, कानापन-लूलापन, कुबडापन, बौनापन, कोढीपन, चित्तकबरापन।

४४, पुरुष प्रमादपूर्वक विभिन्न प्रकार की योनियों का संधान/धारण करता है और नाना प्रकार की यातनाओं का प्रतिसंवेदन करता है।

४५ वह अनजान होता हुआ हत और उपहत होकर जन्म-मरण मे अनुपरिवर्तन/परिभ्रमण करता है।

४६ क्षेत्र और वस्तु मे ममत्व रखने वाले कुछ मनुष्यो को जीवन अलग-अलग रूप मे प्रिय है।

४७ वे रंग-विरंगे मणि कुण्डल और स्वर्ण के साथ स्त्रियों में परिगृद्ध होकर उन्हीं मे अनुरक्त होते है।

४८ इनमे तप, दमन अथवा नियम दिखाई नही देते।

४९ पूर्ण अज्ञानी पुरुष जीवन की कामना एव भोगलिप्सा मे मूढ है। इसलिए वह विपर्यास को प्राप्त होता है।

५० इणमेव णावकंखंति, जे जणा धुवचारिणो ।

५१. जाई-मरण परिण्णाय, चरे संकमणे दढे ।

५२. णत्थि कालस्स णागमो ।

५३. सव्वे पाणा पियाउया सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा पियजीविणो जीविउकामा ।

५४ सव्वेसिं जीवियं पियं ।

५५. तं परिगिज्झ दुपयं चउप्पयं अभिजुंजियाणं संसिंचियाणं तिविहेणं जा वि से तत्थ मत्ता भवइ—अप्पा वा बहुगा वा ।

५६ से तत्थ गड्ढिए चिट्ठइ, भोयणाए ।

५७ तओ से एगया विविहं परिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवइ ।

५८. तं पि से एगया दायाया विभयंति, अदत्तहारो वा से अवहरइ, रायाणो वा से विलुंपंति, णस्सइ वा से, विणस्सइ वा से, अगारदाहेण वा से डज्झइ ।

५९. इय से परस्स अट्ठाए कूराई कम्माई वाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ ।

६० मुणिणा हु एयं पवेइयं ।

६१. अणोहंतरा एए, नो य ओहं तरित्तए ।
अतीरंगमा एए, नो य तीरं गमित्तए ।
अपारंगमा एए, नो य पारं गमित्तए ।

५० जो मनुष्य ध्रुवचारी है, वे इस प्रकार के जीवन की आकांक्षा नहीं करते।

५१ जन्म-मरण को जानकर दृढ संक्रमण/चारित्र में विचरण करे।

५२. मृत्यु का समय निश्चित नहीं है।

५३ सभी प्राणियों को आयुष्य प्रिय है, सुख शाता/अनुकूल है, दुःख प्रतिकूल है, वध अप्रिय है, जीवन प्रिय है और जीवन की कामना है।

५४ सभी के लिए जीवित रहना प्रिय है।

५५ उनमें परिगृद्ध होकर मनुष्य द्विपद (दास-दासी) और चतुष्पद (पशु) को नियुक्त करके त्रिविध — मन, वचन, काया से संचय करता है। वह उनमें अल्प या अधिक उन्मत्त होता है।

५६ वह वहाँ उपभोग के लिए गृद्ध होकर बैठता है।

५७ तब वह किसी समय विविध, परिशेष्ठ, प्रचुर एवं महा-उपकरण वाला हो जाता है।

५८ उसकी उस सम्पत्ति को किसी समय सम्बन्धीजन बांट लेते हैं, चोर चुरा ले जाते हैं, राजा छीन लेता है, नष्ट हो जाता है, विनष्ट हो जाता है, अग्नि से जल जाता है।

५९ इस प्रकार वह दूसरे के अर्थ के लिए क्रूर कर्म करने वाला अज्ञानी है। उस दुःख से मूढ व्यक्ति विपर्यास को प्राप्त करता है।

६० निश्चय ही, मुनि/भगवान् महावीर के द्वारा यह प्रवेदित है।

६१ ये न तो प्रवाह को पार करने वाले हैं। ये न ही तट को प्राप्त करने वाले हैं और न ही तट तक पहुँचने वाले हैं। ये अपारगामी हैं, इसलिए वे पार नहीं हो सकते।

६२. आयाणिज्जं च आयाय, तम्मि ठाणे ण चिट्ठइ ।
विग्रह पप्पखेयण्णे, तम्मि ठाणम्मि चिट्ठइ ।।

६३. उद्देसो पासगस्स णत्थि ।

६४. बाले पुण णिहे कामसमणुण्णे असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ ।

—त्ति बेमि

चउत्थो उद्देसो

६५. तओ से एगया रोग-समुप्पाया समुप्पज्जंति ।

६६. जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते वा णं एगया णियया पुव्विं परिवयंति, सो वा ते णियगे पच्छा परिवएज्जा ।

६७. णालं ते तव ताणाए वा, सरणाए वा ।
तुमपि तेसिं णालं ताणाए वा, सरणाए वा ।

६८. जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं भोगामेव अणुसोयंति ।

६९ इहमेगेसिं माणवाणं ।

७०. तिविहेण जावि से तत्थ मत्ता भवइ—अप्पा वा बहुगा वा ।

७१. से तत्थ गड्ढिए चिट्ठइ भोयणाए ।

६२ संयमी-पुरुष आदानीय (ग्राह्य) को ग्रहण करके उस स्थान मे स्थित नही होता। अखेदज्ञ/असंयमी-पुरुष वितथ्य/असत्य को प्राप्त करके उस स्थान मे स्थित होता है।

६३ तत्त्वद्रष्टा के लिए कोई उपदेश नही है।

६४ परन्तु अज्ञानी पुरुष स्नेह और काम मे आसक्त होने से दुःख का शमन नही करता। दुःखी व्यक्ति दुःखो के चक्र मे ही अनुपरिवर्तन करता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

६५ तब उसके लिए रोग के उत्पात उत्पन्न हो जाते है।

६६ जिनके साथ रहता है, वे स्वजन ही सबसे पहले निन्दा करते है। बाद मे वह उन स्वजनो की निन्दा करता है।

६७ वे तुम्हारे लिए त्राण या शरण देने मे समर्थ नही है। तुम भी उनके लिए त्राण या शरण देने मे समर्थ नही हो।

६८ वह प्रत्येक दुःख को शाताकारी जानकर भोगो का ही अनुचिन्तन करता है।

६९ इस संसार मे कुछ मनुष्यो के लिए भोग होते है।

७० वह मन-वचन-काया के तीन योगो मे उनमे अल्प या अधिक उन्मत्त होता है।

७१ वह वहाँ उपभोग के लिए गृद्ध होकर बैठता है।

७२. तओ से एगया विपरिसिट्ठं संभूय महोवगरण भवइ ।

७३. तं पि से एगया दायाया विभयति, अदत्तहारो वा से अवहरइ, रायाणो वा से विलुंपंति, णस्सइ वा से, विणस्सइ वा से, अगारडाहेण वा डज्झइ ।

७४. इय से परस्स अट्ठाए कूराइं कम्माइं वाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ ।

७५. आसं च छंदं च विगिंच धीरे ।

७६. तुम चेव त सल्लमाहट्टु ।

७७. जेण सिया तेण णो सिया ।

७८. इणमेव णावबुज्झति, जे जणा मोहपाउडा ।

७९. थीभि लोए पव्वहिए ।

८०. ते भो वयति—एयाइं आययणाइ ।

८१ से दुक्खाए मोहाए माराए णरगाए णरग-तिरिक्खाए ।

८२. सयय मूढे धम्म णाभिजाणइ ।

८३. उआहु वीरे—अप्पमाओ महामोहे ।

८४ अलं कुसलस्स पमाएणं ।

८५. संति-मरणं सपेहाए ।

७२ तब वह किसी समय विविध, परिशिष्ट प्रचुर एवं महा-उपकरण वाला हो जाता है।

७३ उसकी उस सम्पत्ति को किसी समय सम्बन्धीजन बाँट लेते है, चोर चुरा ले जाते है, राजा छीन लेता है, नष्ट हो जाता है, विनष्ट हो जाता है, अग्नि से जल जाता है।

७४ इस प्रकार वह दूसरे के अर्थ के लिए क्रूर कर्म करने वाला अज्ञानी है। उस दु ख मे मूढ व्यक्ति विपर्यास करता है।

७५ हे धीर! आशा और स्वच्छन्दता को छोड।

७६ तू ही उस शल्य का निर्माता है।

७७ जिससे [भोग] है, उसीसे नही है।

७८ जो जन मोह से आवृत हैं, वे इसे समझ नही पाते।

७९ स्त्रियों से लोक व्यथित है।

८० वे कहते है, हे पुरुष! ये [भोग] आयतन हैं।

८१ वे दु ख, मोह, मृत्यु, नरक और नरकानन्तर तिर्यंच के लिए है।

८२ सतत मूढ-पुरुष धर्म को नही जानता है।

८३ महावीर ने कहा— महामोह मे प्रमाद मत करो।

८४ कुशल-पुरुष के लिए प्रमाद से क्या प्रयोजन?

८५ शान्ति और मरण की सप्रेक्षा करो।

८६. भेउरधम्म सपेहाए ।

८७ णाल पास ।

८८ अल ते एएहि ।

८९. एय पस्स मुणी ! महब्भय ।

९० णाइवाएज्ज कंचणं ।

९१ एस वीरे पसंसिए, जे ण णिव्विज्जइ आयाणाए ।

९२ ण मे देइ ण कुप्पिज्जा, थोवं लद्धुं न खिंसए ।

९३ पडिसेहिओ परिणमिज्जा ।

९४. एयं मोणं समणुवासेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

पंचमो उद्देसो

९५. जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं लोगस्स कम्म-समारंभा कज्जंति तं जहा—अप्पणो से पुत्ताणं धूयाणं सुण्हाणं णाईणं धाईणं राईणं दासाणं दासीणं कम्मकराणं कम्मकरीणं आएसाए, पुढो पहेणाए, सामासाए, पायरासाए ।

९६ संनिहि-संनिचओ कज्जइ इहमेगेसिं माणवाणं भोयणाए ।

९७. समुट्ठिए अणगारे आरिए आरियपण्णे आरियदंसी अयं संधि इ अदक्खु से णाइए, णाइयावए, ण समणुजाणइ ।

८६. भगुर-धर्म/शरीर-धर्म की सप्रेक्षा करो ।

८७. देख ! ये पर्याप्त नही है ।

८८ इनमे तुम दूर रहो ।

८९. हे मुने ! इन्हे महाभय रूप देखो ।

९०. किसी का भी अतिपात (वध) मत करो ।

९१. वह वीर प्रशसनीय है, जो आदान [सयम-जीवन] मे जुगुप्सा नही करता ।

९२ मुझे नही देता, यह सोचकर क्रोध न करे । थोडा प्राप्त होने पर न खीजे ।

९३ प्रतिषेध हो, तो लौट जाए ।

९४. इस प्रकार मौन की उपासना करे ।

पंचम उद्देशक

९५ जिनके द्वारा विविध प्रकार के शस्त्रो से लोक मे कर्म-समारम्भ किये जाते है, जैसे कि वह अपने पुत्र, पुत्री, वधू, ज्ञातिजन, धाय, राजकर्मचारी, दास, दासी, नौकर, नौकरानी का आदेश देता है — नाना उपहार, सायकालीन भोजन तथा प्रात कालीन भोजन के लिए ।

९६. वे इस संसार मे कुछ लोगो के भोजन के लिए सन्निधि और सन्निचय करते है ।

९७. वह संयम-स्थित, अनगार, आर्यप्रज्ञ, आर्यदर्शी, अवसर-द्रष्टा, परमार्थ-ज्ञाता अग्राह्य का न ग्रहण करे, न करवाए और न समर्थन करे ।

९८. सव्वामगंध परिण्णाय, णिरामगंधो परिव्वए ।

९९. अदिस्समाणे कय-विक्कएसु । से ण किणे, ण किणावए, किणंतं ण समणुजाणइ ।

१०० से भिक्खू कालण्णे बलण्णे मायण्णे खेयण्णे खणयण्णे विणयण्णे ससमयपर-समयण्णे भावण्णे, परिग्गह अममायमाणे, कालाणुट्ठाई, अपडिण्णे ।

१०१. दुहओ छेत्ता णियाइ ।

१०२. वत्थ पडिग्गह, कंबल पायपुछण, उग्गह च कडासण एएसु चेव जाएज्जा ।

१०३. लद्धे आहारे अणगारो माय जाणेज्जा से जहेय भगवया पवेइयं ।

१०४. लाभो त्ति न मज्जेज्जा ।

१०५. अलाभो त्ति ण सोयए ।

१०६. बहुं पि लद्धुं ण णिहे ।

१०७. परिग्गहाओ अप्पाण अवसक्किज्जा ।

१०८. अण्णहा ण पासए परिहरिज्जा ।

१०९. एस मग्गे आरिएहिं पवेइए ।

११०. जहेत्थ कुसले णोवलिपिज्जासि ।

—त्ति बेमि

९८ वह समस्त अशुद्ध आहारो को जानकर निरामगंधी/शाकाहारी/शुद्धाहारी रूप मे विचरण करे।

९९ क्रय-विक्रय मे अदृश्यमान/अकिंचन होता हुआ वह [अनगार] न तो क्रय करे, न क्रय करवाए और न क्रय करने वाले का समर्थन करे।

१००. वह भिक्षु कालज्ञ, बलज्ञ, मात्रज्ञ, क्षेत्रज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ, स्वसमय-परसमयज्ञ, भावज्ञ, परिग्रह के प्रति अमूर्च्छित, काल का अनुष्ठाता और अप्रतिज्ञ बने।

१०१ वह [राग और द्वेष] दोनो को छेदकर मोक्षमार्गी बने।

१०२. वह वस्त्र, प्रतिग्रह/पात्र, कबल, पाद-पुंछन, अवग्रह/स्थान और कटासन/आसन—इनकी ही याचना करे।

१०३ अनगार प्राप्त आहार की मात्रा/परिमाण को समझे। जैसा उसे भगवान ने कहा है।

१०४ लाभ होने पर मद न करे।

१०५. अलाभ होने पर शोक न करे।

१०६. बहुत प्राप्त होने पर संग्रह न करे।

१०७ परिग्रह से स्वय को दूर रखे।

१०८. तत्त्वद्रष्टा अन्यथा-भाव को छोड दे।

१०९ यह मार्ग आर्यपुरुषो द्वारा प्रवेदित है।

११० यथार्थ कुशल-पुरुष [परिग्रह] मे लिप्त न हो।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१११. कामा दुरतिक्कमा ।

११२. जीवियं दुप्पडिवूहग ।

११३. कामकामी खलु अय पुरिसे ।

११४. से सोयइ जूरइ तिप्पइ परितप्पइ ।

११५. आययचक्खू लोग-विपस्सी लोगस्स अहो भाग जाणइ, उड्ढ भागं जाणइ, तिरिय भाग जाणइ ।

११६. गढिए अणुपरियट्टमाणे, संधि विदित्ता इह मच्चिएहिं ।

११७. एस वीरे पससिए, जे बद्धे पडिमोयए ।

११८. जहा अतो तहा बाहिं, जहा बाहिं तहा अंतो ।

११९. अतो अंतो पूइ-देहतराणि पासइ पुढोवि सवंताइं, पडिए पडिलेहाए ।

१२०. से मइमं परिण्णाय, मा य हु लालं पच्चासी ।

१२१. मा तेसु तिरिच्छमप्पाणमावायए ।

१२२. कासंकासे खलु अयं पुरिसे, बहुमाई ।

१२३. कडेण मूढे पुणो तं करेइ ।

१२४. लोहं वेर वड्ढेइ अप्पणो ।

१२५ जमिणं परिकहिज्जइ, इमस्स चेव पडिवूहणयाए ।

१११. काम दुरतिक्रम है ।

११२. जीवन दुष्प्रतिवृ ह/वृद्धिरहित है ।

११३. यह पुरुष निश्चयत काम कामी है ।

११४ यह शोक करता है, जीर्ण/ज्वरित होता है, तप्त होता है, परितप्त होता है ।

११५ आयतचक्षु/दीर्घदर्शी और लोकविपश्यी लोक के अधोभाग को जानता है, ऊर्ध्वभाग को जानता है, तिर्यक्भाग को जानता है ।

११६ अनुपरिवर्तन करने वाला गृद्ध-पुरुष इस मृत्युजन्य सन्धि को जानकर [निष्काम वने ।]

११७ जो वन्धन से प्रतिमुक्त है, वही वीर प्रशसित है ।

११८ [देह] जैसी भीतर है, वैसी वाहर है, जैसी वाहर है, वैसी भीतर है ।

११९ मनुष्य देह के भीतर-से-भीतर अशुचिता देखता है, उसे पृथक्-पृथक् छोडता है । पडित इसका प्रतिलेख/चिन्तन करे ।

१२० वह मतिमान् पुरुप यह जानकर लालसा का प्रत्याशी न बने ।

१२१ वह तत्त्व-ज्ञान से स्वय को विमुख न करे ।

१२२ निश्चय ही यह पुरुप [विचार करता हे कि] 'मैने किया या करूँगा ।' वह वहुमायावी है ।

१२३ वह मूर्ख उस कृतकार्य को वारम्वार करता है ।

१२४ वह अपने लोभ और वैर को वढाता है ।

१२५ इसीलिए कहा जाता है कि ये [लोभ और वैर] समार-वृद्धि के लिए हैं ।

१२६ अमरा य महासड्ढी, अट्टमेय पेहाए अपरिण्णाए कंदइ ।

१२७ से तं जाणह जमहं बेमि ।

१२८ तेइच्छं पंडिए पवयमाणे से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता ।

१२९. अकडं करिस्सामित्ति मण्णमाणे, जस्स वि य णं करेइ ।

१३०. अलं बालस्स संगेण ।

१३१. जे वा से कारेइ बाले ।

१३२ ण एवं अणगारस्स जायइ ।

—त्ति बेमि ।

छट्ठो उद्देसो

१३३ से तं संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए ।

१३४. तम्हा पावं कम्मं, णेव कुज्जा ण कारवेज्जा ।

१३५ सिया से एगयरं विप्परामुसइ ।

१३६. छसु अण्णयरंसि कप्पइ ।

१३७. सुहट्ठी लालप्पमाणे सएण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ ।

१२६ अमर और महाश्रद्धालु आर्त/पीड़ितजनो को देखता है, किन्तु अज्ञानी क्रन्दन करता है।

१२७ इसलिए उसे समझे, जो मै कहता हूँ।

१२८ पंडित/ज्ञानी के उपदेश देने पर भी [अज्ञानी] चिकित्सा हेतु हनन, छेदन, भेदन, लुंपन, विलुंपन एव प्राणवध करते है।

१२९ अकृत करूँगा, यह मानते हुए जिस किसी का उपचार करते हैं।

१३०. बालक (मूढ) की सगति से क्या लाभ ?

१३१ जो ऐसा करवाते है, वे बाल/अज्ञानी है।

१३२ किन्तु अनगार ऐसा नही करता।

—ऐसा मै कहता हूँ।

षष्ठ उद्देशक

१३३ वह उन आज्ञाओ [उपदेश] को समझकर ग्रहण करे।

१३४ इसलिए पापकर्म न करे, न करवाए।

१३५ वह कभी-कभी एकेन्द्रिय के विपर्यास को प्राप्त होता है।

१३६ वह छहँ [जीवनिकायों] या अन्य पर्यायों मे जाता है।

१३७ सुखार्थी मूढ व्यक्ति आसक्त होता हुआ अपने सुख मे विपर्यास को प्राप्त होता है।

१३८ सएण विप्पमाएण. पुढो वयं पकुव्वइ ।

१३९. जंसिमे पाणा पव्वहिया, पडिलेहाए णो णिकरणाए ।

१४०. एस परिण्णा पवुच्चइ, कम्मोवसंती ।

१४१. जे ममाइय-मइं जहाइ, से जहाइ ममाइयं ।

१४२. से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स णत्थि ममाइयं ।

१४३. तं परिण्णाय मेहावी ।

१४४. विइत्ता लोग, वता लोगसण्णं, से मइम परक्कमेज्जासि त्ति वेमि ।

१४५. णारइ सहई वीरे, वीरे ण सहई रइं ।
जम्हा अविमणे वीरे, तम्हा वीरे ण रज्जइ ।

१४६. सद्दे य फासे अहियासमाणे, णिव्विद णंदि इह जीवियस्स,
मुणी मोण समादाय, धुणे कम्म-सरीरगं ।

१४७ पंत लूहं सेवति वीरा समत्तदसिणो ।

१४८. एस ओहंतरे मुणी, तिण्णे मुत्ते विरए, वियाहिए त्ति वेमि ।

१४९ दुव्वसु मुणी अणाणाए ।

१५०. तुच्छए गिलाइ वत्तए ।

१५१. एस वीरे पसंसिए, अच्चेइ लोयसंजोयं ।

१३८ वह स्वयं के प्रति प्रमाद से पृथक-पृथक अवस्थाओं को प्राप्त करता है।

१३९ जिनसे ये प्राणी व्यथित हैं, उन्हें प्रतिलेख करके भी वे निराकरण नहीं कर पाते हैं।

१४०. यह परिज्ञा कही गयी है। इसमें कर्म उपशान्त होते हैं।

१४१ जो ममत्व-मति को त्याग करता है, वह ममत्व को त्याग करता है।

१४२ वही दृष्टिपथ मुनि है, जिसके ममत्व नहीं है।

१४३ वही परिज्ञात मेधावी (मुनि) है।

१४४ लोक को जानकर एवं लोक-संज्ञा को छोड़कर वह बुद्धिमान [मुनि] पराक्रम करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१४५. वीर-पुरुष अरति को सहन करता है।
वीर-पुरुष रति को सहन नहीं करता है।
वीर-पुरुष अविमन/निर्विकल्प है, इसलिए वीर-पुरुष रंज नहीं करता है।

१४६ शब्द और स्पर्श को सहन करते हुए मुनि इस जीवन की तुष्टि और जुगुप्सा को मौनपूर्वक देख-परखकर कर्म-शरीर अलग करे।

१४७ समत्वदर्शी वीर-पुरुष नीरस और रूक्ष भोजन का सेवन करते हैं।

१४८ मुनि इस घोर संसार-सागर से तीर्ण, मुक्त एवं विरत कहा गया है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१४९ आज्ञारहित मुनि दुर्वसु/अयोग्य है।

१५०. वह तुच्छ है, कहने में ग्लानि का अनुभव करता है।

१५१ वह वीर प्रशंसनीय है, जो लोक-संयोग को छोड़ देता है।

१५२ एस णाए पवुच्चइ ।

१५३ जं दुक्खं पवेइय इह माणवाण, तस्स दुक्खस्स कुसला परिण्णमुदाहरंति ।

१५४ इइ कम्म परिण्णाय सव्वसो ।

१५५ जे अणण्णदंसी, से अणण्णारामे,
जे अणण्णारामे, से अणण्णदंसी ।

१५६ जहा पुण्णस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ, तहा पुण्णस्स कत्थइ ।।

१५७. अवि य हणे अणाइयमाणे एत्थपि जाण, सेयति णत्थि ।

१५८. के यं पुरिसे ? क च णए ?

१५९. एस वीरे पसंसिए, जे बद्धे पडिमोयए, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु ।

१६०. से सव्वओ सव्वपरिण्णाचारी ।

१६१. ण लिप्पई छणपएण वीरे ।

१६२. से मेहावी अणुग्घायण-खेयण्णे, जे य बंधप्पमोक्खमण्णेसी ।

१६३. कुसले पुण णो बद्धे, णो मुक्के ।

१६४. से जं च आरभे, जं च णारभे ।

१६५. अणारद्धं च णारभे ।

१५२ यह न्याय [लोकनीति] कहलाता है।

१५३ इस संसार में जो दुःख मनुष्यों के लिए कहे गये हैं, उन दुःखों का कुशल [साधक] परिज्ञा (प्रज्ञा) पूर्वक परिहार करते हैं।

१५४ इस प्रकार कर्म सर्व प्रकार से परिज्ञात हैं।

१५५ जो अनन्यदर्शी (आत्मदर्शी) है, वह अनन्य (आत्मा) में रमण करता है, जो अनन्य (आत्मा) में रमण करता है, वह अनन्यदर्शी (आत्मदर्शी) है।

१५६ जैसा पुण्यात्मा के लिए कथन किया गया है, वैसा ही तुच्छ के लिए कथन किया गया है। जैसा तुच्छ के लिए कथन किया गया है, वैसा ही पुण्यात्मा के लिए कथन किया गया है।

१५७. अनादर होने पर घात करना, इसे श्रेयस्कर न समझे।

१५८ यह पुरुष कौन है? किस नय (दृष्टिकोण) का है।

१५९. वह वीर प्रशंसित है, जो ऊर्ध्व, अधो, तिर्यक् दिशा में आबद्ध को मुक्त करता है।

१६० वह सभी ओर से पूर्ण प्रज्ञाचारी है।

१६१ वीर-पुरुष क्षण-भर भी लिप्त नहीं होता है।

१६२ जो बन्ध-मोक्ष का अन्वेषक कर्म का अनुघात करता है, वह मेधावी क्षेत्रज्ञ है।

१६३ कुशल-पुरुष (पूर्ण ज्ञानी) न तो बद्ध है, न मुक्त।

१६४ वह आचरण करता है और आचरण नहीं भी करता।

१६५ अनारब्ध/अनाचीर्ण का आचरण नहीं करता है।

१६६. छणं छणं परिण्णाय, लोगसण्णं च सव्वसो।

१६७. उद्देसो पासगस्स णत्थि।

१६८. बाले पुणे णिहे कामसमणुण्णे असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ।

—त्ति बेमि

१६६ लोक-संज्ञा सभी ओर से क्षण-क्षण परिज्ञात है।

१६७ तत्त्वद्रष्टा के लिए कोई निर्देश नहीं है।

१६८ परन्तु स्नेह और काम मे आसक्त बाल/अज्ञानी-पुरुष दु ख-शमन न करने से दु खी हैं। वे दु खो के आवर्त/चक्र मे ही अनुपरिवर्तन करते हैं।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तइयं अज्झयणं

सीओसणिज्जं

तृतीय अध्ययन

शीतोष्णीय

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय का नाम 'शीतोष्णीय' है। 'शीत' अनुकूलता का परिचय-पत्र है तो उष्ण प्रतिकूलता का। अनुकूल और प्रतिकूल मे साम्य-भाव रखना समत्व-योग है। शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों मे सूर्य की भाँति समरश्मि प्रसारित करने वाला ही महावीर के महापथ का पथिक है।

मनोदीप की निष्कम्पता ही समत्वदर्शन है। 'मैं' वर्तमान हूँ। अतीत और भविष्य मे मेरा कम्पन सार्थक नहीं है। वर्तमान का अनुपश्यी ही मन की सशरण-शील वृत्तियों का अनुप्रेक्षण कर सकता है। प्राप्त क्षण की प्रेक्षा करने वाला ही दीक्षित है।

साधक संसार मे प्रिय और अप्रिय की विभाजन-रेखाएँ नहीं खींचता। दो आयामों के मध्य, बाये और दाये तट के बीच प्रवहणशील होना सरित्-जल का सन्तुलन है। दो मे से एक का चयन करना सन्तुलितता का अतिक्रमण है। चयन-वृत्ति मन की माँ है। समत्व चयन-रहित समदर्शिता है। चुनावरहित सजगता मे मन का निर्माण नहीं होता। चयन-दृष्टि ही मन की निर्मात्री है। साधना का प्रथम चरण मन के चाचल्य को समझना है। मनोवृत्तियों को पहचानना और मन की गाँठों को खोजना आत्म दर्शन की पूर्व भूमिका है। मन तो रोग है। रोग को समझना और उसका निदान पाना स्वास्थ्य-लाभ का सफल चरण है।

सर्वदर्शी महावीर अध्यात्म विद्या के प्रमुख अधिष्ठाता है। उन्होंने मन की प्रत्येक वृत्ति का अतल अध्ययन किया है। प्रस्तुत अध्याय साधकों की स्नातक कक्षा मे दिया गया उनका अभिभाषण है। उनके अनुसार मनोवृत्तियों का पठन-अध्ययन अप्रमत्त चेता-पुरुष ही कर सकता है।

महावीर की अध्यापन-शैली अत्यन्त विशिष्ट है। वे अध्यात्म के आत्मद्रष्टा दार्शनिक है। वे एक के ज्ञान मे अनेक का ज्ञान स्वीकार करते हैं। एक मनोवृत्ति को समग्रभाव से पढ़ना वृत्तियों के सम्पूर्ण व्याकरण को निहारना है। मन का

द्रष्टा अपने अस्तित्व का पहरेदार है। द्रष्टाभाव, साक्षीभाव मन के कर्दम से उपरत होकर आत्म-गगन में प्रस्फुटित होने का प्रथम आयाम है।

मन का बिखराव बाह्य जगत के सौजन्य से होता है। इस बिखराव में चेतना दोहरा संघर्ष करती है। पहला संघर्ष चेतना के आदर्श और वासना-मूलक पक्षों में होता है तथा दूसरा उस परिवेश के साथ होता है, जिसमें मनुष्य अपनी इच्छा/वासना की पूर्ति चाहता है। यह संघर्ष ही आत्म-ऊर्जा को विच्छिन्न और कुण्ठित करता है।

'शीतोष्णीय' वह अध्याय है, जो आदर्श और यथार्थ, आभ्यन्तर और बाह्य, गति और स्थिति, व्यक्ति और समाज में सन्तुलन लाने का पाठ पढाता है। विक्षोभ उत्तेजना तथा संवेदना से उत्पन्न होता है। प्रस्तुत अध्याय विक्षोभ-निवारण हेतु समत्व योग को अचूक मानता है।

मनुष्य अनेक चित्तवान है। इसलिए वह अनगिनत चित्तवृत्तियों का समुदाय है। इच्छा चित्तवृत्ति की ही सहेली है। इच्छाओं का भिक्षापात्र दुष्पूर है। इच्छा-पूर्ति के लिए की जाने वाली श्रम-साधना चलनी में जल भरने जैसी विचारणा है। चित्त के नाटक का पटापेक्ष कैसे किया जाये, प्रस्तुत अध्याय यही कौशल सिखाता है।

साधक का धर्म है—चारित्रगत बारीकियों के प्रति प्रतिपग/प्रतिपल जगना। प्रमाद एवं विलासिता की चपेट में आ जाना साधना-पथ में होने वाली दुर्घटना है। वह अप्रमत्त नहीं, घायल है।

साधक महापथ का पाथ है। अप्रमाद उसका न्यास है। मौन मन ही उसके मुनित्व की प्रतिष्ठा है। अप्रमत्तता, अनासक्ति, निष्कषायता, समदर्शिता एवं स्वावलम्बिता के अंगरक्षक साथ हों, तो साधक को कैसा खतरा। आत्म-जागरण का दीप आठों याम ज्योतिर्मान रहे, तो चेतना के गहराव में कहाँ होगा अन्धकार और कहाँ होगा भटकाव!

पढमो उद्देसो

१. सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरन्ति ।

२. लोयंसि जाण अहियाय दुक्ख ।

३. समयं लोगस्स जाणित्ता, एत्थ सत्थोवरए ।

४. जस्सिमे सद्दा य रूवा य रसा य गंधा य फासा य अभिसमण्णागया भवंति, से आयव नाणवं वेयवं धम्मवं बभवं ।

५. पण्णाणेहिं परियाणइ लोयं, मुणीति वुच्चे ।

६ धम्मविऊ उज्जू आवट्टसोए संगमभिजाणइ ।

७. सीओसिणच्चाई से निग्गथे अरइ-रइ-सहे फरुसियं णो वेएइ ।

८. जागर-वेरोवरए वीरे एवं दुक्खा पमोक्खसि ।

९. जरामच्चुवसोवणीए णरे, सयय मूढे धम्मं णाभिजाणइ ।

१०. पासिय आउरे पाणे अप्पमत्तो परिव्वए ।

११. मंता एयं मइमं ! पास ।

१२ आरंभजं दुक्खमिणति णच्चा माई पमाई पुणरेइ गब्भं ।

प्रथम उद्देशक

१. सुपुप्त अमुनि है, मुनि सदा जागृत है।

२ लोक मे दुःख को अहितकर समझे।

३ लोक के समय [आचार] को जानकर शस्त्र से उपरत हो।

४. जिसको ये शब्द रूप, रस, गंध और स्पर्श भली-भाँति ज्ञात है, वह आत्मज्ञ, ज्ञानज्ञ, वेदज्ञ, धर्मज्ञ और ब्रह्मज्ञ है।

५ जो लोक को प्रज्ञा से जानता है, वह मुनि कहा जाता है।

६ ऋजु धर्मविद्-पुरुष आवर्त/ससार की परिधि के सम्बन्ध को जानता है।

७ वह शीत-उष्ण का त्यागी निर्ग्रन्थ अरति-रति को सहन करता है, कठोरता का अनुभव नहीं करता है।

८ इस प्रकार जागृत और वैर से उपरत वीर-पुरुष दुःखो से मुक्त होता है।

९ सतत मूढ नर जरा और मृत्युवश धर्म को नहीं जानता है।

१० प्राणी को आतुर देखकर अप्रमत्त रहे।

११ हे मतिमन्! इस तरह मानकर देख।

१२. यह दुःख हिंसज है, ऐसा जानकर मायावी और प्रमादी बारम्बार गर्भ/जन्म प्राप्त करता है।

१३. उवेहमाणो सद्द-रूवेसु उज्जू, माराभिसंकी मरणा पमुच्चइ ।

१४. अप्पमत्तो कामेहि, उवरओ पावकम्मेहिं, वीरे आयगुत्ते खेयण्णे ।

१५. जे पज्जवज्जाय-सत्थस्स खेयण्णे, से असत्थस्स खेयण्णे,
जे असत्थस्स खेयण्णे, से पज्जवज्जाय-सत्थस्स खेयण्णे ।

१६. अकम्मस्स ववहारो न विज्जइ ।

१७. कम्मुणा उवाही जायइ ।
१८. कम्म च पडिलेहाए ।

१९. कम्ममूल च जं छणं, पडिलेहिय सव्व समायाय, दोहिं अंतेहिं अदिस्समाणे ।

२०. तं परिण्णाय मेहावी विइत्ता लोग, वंता लोगसण्णं ।

२१. से मेहावी परक्कमेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

२२. जाइं च वुड्ढि च इहज्ज ! पासे भूएहिं जाणे पडिलेह सायं, तम्हा तिविज्जो परमंति णच्चा, समत्तदंसी ण करेइ पावं ।

२३. उम्मुंच पासं इह मच्चिएहिं ।

१३ शब्द और रूप की उपेक्षा करने वाला ऋजु-पुरुष मार की आशका एव मृत्यु से मुक्त होता है।

१४. काम से अप्रमत्त, पापकर्म से उपरत, पुरुष वीर, आत्मगुप्त और क्षेत्रज्ञ है।

१५ जो पर्याय की उत्पत्ति का शस्त्र जानता है, वह अशस्त्र को जानता है। जो अशस्त्र को जानता है, वह पर्याय की उत्पत्ति का शस्त्र जानता है।

१६. अकर्म का व्यवहार नही रहता है।

१७ कर्म से उपाधियाँ उत्पन्न होती है।

१८ कर्म का प्रतिलेख करे।

१९. उसी क्षण कर्म के मूल का प्रतिलेख कर सभी उपायो को ग्रहण करके दोनो अन्तो/तटो [राग और द्वेप] से अदृश्यमान रहे।

२० वह परिज्ञात मेधावी-पुरुष लोक को जानकर, लोक-सज्ञा का त्याग करे।

२१. वह मेधावी पराक्रम करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

२२ हे आर्य! इस ससार में जन्म और वृद्धि को देख। प्राणियो को समझ एवं उनकी शाता को देख। ये तीन [सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र] विद्याएँ परम हैं, यह जानकर समत्वदर्शी पाप नही करता है।

२३. इस संसार मे मृत्यु-पाश से उन्मुक्त बनो।

२४. आरंभजीवी उभयाणुपस्सी ।

२५. कामेसु गिद्धा णिचयं करेंति, ससिच्चमाणा पुणरेंति गब्भं ।

२६. अवि से हासमासज्ज, हंता णंदीति मन्नइ ।

२७. अलं बालस्स सगेण ।

२८. वेर वड्ढेइ अप्पणो ।

२९. तम्हा तिविज्जो परमति णच्चा, आयंकदसी ण करेइ पावं ।

३०. अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे ।

३१ पलिच्छिंदिया ण णिक्कम्मदसी एस मरणा पमुच्चइ ।

३२. से हु दिट्ठपहे मुणी ।

३३. लोयसी परमदंसी विवित्तजीवी उवसंते,
समिए सहिए सया जए कालकखी परिव्वए ।

३४ बहुं च खलु पाव-कम्मं पगडं ।

३५. सच्चंसि धिइ कुव्वह ।

३६ एत्थोवरए मेहावी सव्व पाव-कम्म झोसइ ।

३७. अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे, से केयणं अरिहए पूरिण्णए ।

२४ हिंसक पुरुष उभय (शरीर व मन) का अनुपश्यी है।

२५. काम-गृद्ध पुरुष सचय करते है और सचय करते हुए पुन पुन गर्भ प्राप्त करते है।

२६ वह हँसी मे भी हनन करके आनन्द मानता है।

२७. वालक (मूढ) की सगति से क्या प्रयोजन ?

२८ वह अपना वैर वढाता है।

२९ ये तीन [सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र] विद्याएँ परम है, यह जानकर आतकदर्शी/आत्मदर्शी पाप नही करता है।

३०. धीर-पुरुष अग्र [घाती कर्म] और मूल [मिथ्यात्व] का त्याग करे।

३१. कर्म-छेदन करने वाला निष्कर्मदर्शी है, वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है।

३२. वही पथद्रष्टा मुनि है।

३३. लोक मे परमदर्शी, विविक्त जीवी/समत्वयोगी उपशान्त, समितिसहित, सदा विजयी, कालकाक्षी (समाधिमरणाकाक्षी) होकर परिव्रजन करता है।

३४. निश्चय ही वहुत से पापकर्म किये गये हैं।

३५ सत्य मे धृति करो।

३६. इस [सत्य] मे रत रहने वाला मेधावी पुरुष समस्त पाप-कर्मो का शोषण कर डालता है।

३७. निश्चय ही यह पुरुष अनेक चितवान है। वह केतन/चलनी को पूरना/भरना चाहता है।

३८ से अण्णवहाए अण्णपरियावाए अण्णपरिग्गहाए, जणवयवहाए जणवयपरियावाए जणवयपरिग्गहाए।

३९. आसेवित्ता एयमट्ठं इच्चेवेगे समुट्ठिया।

४० तम्हा त बिइय णो सेवए णिस्सार पासिय णाणी।

४१. उववाय चवण णच्चा। अणण्ण चर माहणे!

४२. से ण छणे ण छणावए, छणतं णाणुजाणइ।

४३. णिव्विद णंदि अरए पयासु।

४४. अणोमदंसी णिसण्णे पावेहिं कम्मेहिं।

४५. कोहाइमाण हणिया य वीरे, लोभस्स पासे णिरयं महंत।
तम्हा हि वीरे विरए वहाओ, छिंदेज्ज सोय लहुभूय-गामी॥

४६. गय परिण्णाय इहज्जेव धीरे, सोयं परिण्णाय चरेज्ज दंते।
उम्मज्ज लद्धु इह माणवेहिं, णो पाणिणं पाणे समारंभेज्जासि॥

—त्ति बेमि

तइओ उद्देसो

४७. संधि लोगस्स जाणित्ता, आयओ बहिया पास।

३८ वह दूसरो का वध, दूसरो को परिताप, दूसरो का परिग्रह, जनपद का वध, जनपद को परिताप, जनपद का परिग्रह [करना चाहता है।]

३६. इस अर्थ का सेवन करके वह वेग/समार-प्रवाह मे उपस्थित है।

४०. इसलिए ज्ञानी पुरुप इसे निस्सार देखकर दूसरी वार सेवन न करे।

४१ उत्पाद और च्यवन को जानकर तत्त्वद्रष्टा अनन्य (ध्रौव्य) का आचरण करे।

४२ वह न तो क्षय करे, न क्षय करवाए और न ही क्षय करने वाले का समर्थन करे।

४३ प्रजा की जुगुप्सा एव आनन्द मे अरत बने।

४४ अनुपमदर्शी पापकर्मो से दूर रहे।

४५ वीर-पुरुप क्रोध एवं मान का हनन करे। लोभ को महान् नरक समझे। इसलिए वीर-पुरुप वध से विरत रहे। लघुभूतगामी-पुरुप (साम्यभावी) शोक का छेदन करे।

४६ इन्द्रियविजयी धीर-पुरुप ग्रन्थियो को जानकर, शोक को जानकर विचरण करे। इस मनुष्य-जन्म मे उन्मज्ज/कच्छपवत् इन्द्रिय-सयमी होकर प्राणियो के प्राणो का वध न करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तृतीय उद्देशक

४७ लोक की सन्धि को जानकर वाह्य (जगत) को आत्मवत देख।

४८. तम्हा ण हंता ण विघायए ।

४९. जमिणं अण्णमण्णावइगिच्छाए पडिलेहाए ण करेइ पाव कम्मं, किं तत्थ मुणी कारण सिया ?

५०. समय तत्थुवेहाए, अप्पाण विप्पसायए ।

५१. अणण्णपरमं नाणी, णो पमाए कयाइ वि ।

५२. आयगुत्ते सया वीरे, जायामायाए जावए ।

५३ विरागं रूवेहिं गच्छेज्जा, महया खुड्डएहिं वा ।

५४ आगइ गइं परिण्णाय, दोहिं वा अंतेहिं अदिस्समाणे ।
से ण छिज्जइ ण भिज्जइ ण डज्झइ, ण हम्मइ कंचण सव्वलोए ।।

५५. अवरेण पुव्व ण सरंति एगे, किमस्सईअ ? किं वागमिस्सं ?
भासंति एगे इह माणवा उ, जमस्सईअं आगमिस्सं ।।

५६ णाईअमट्ठ ण य आगमिस्स, अट्ठं नियच्छति तहागया उ ।
विधूय-कप्पे एयाणुपस्सी, णिज्झोसइत्ता खवगे महेसी ।।

५७ का अरई ? के आणदे ? एत्थपि अग्गहे चरे ।

५८. सव्वं हासं परिच्चज्ज, आलीण-गुत्तो परिव्वए ।

५९. पुरिसा ! तुममेव तुम मित्त, किं वहिया मित्तमिच्छसि ?

६० ज जाणेज्जा उच्चालइयं, तं जाणेज्जा दूरालइय ।
ज जाणेज्जा दूरालइय, त जाणेज्जा उच्चालइय ।।

४८ इसलिए न मारे, न घात करे।

४९ जो एक दूसरे को चिकित्सक की तरह प्रतिलेख (परीक्षण) करके पाप कर्म नही करता हे, क्या यह मुनि-पद का कारण है ?

५० समता का प्रेक्षक आत्मा को प्रसन्न करे, निर्मल करे।

५१. अनन्य परम ज्ञानी (आत्मज्ञ) कभी भी प्रमाद न करे।

५२ आत्म-गुप्त वीर सदा यात्रा की मात्रा (सयम) का उपयोग करे।

५३ महान या क्षुद्र रूपो से विराग करे।

५४ आगति और गति को जानकर दोनो ही अन्तो (राग-द्वेप) से अदृश्यमान होता हुआ वह ज्ञानी सम्पूर्ण लोक मे किसी तरह से न तो छेदा जाता है, न भेदा जाता है, न जलाया जाता है, न मारा जाता है।

५५ कुछ लोग अतीत और भविष्य का स्मरण नही करते। कुछ मनुष्य कहते है कि अतीत मे क्या हुआ और भविष्य मे क्या होगा ?

५६. तथागत को न तो अतीत से प्रयोजन है, न भविष्य से प्रयोजन है। विधूत-कल्पी महर्पि इनका अनुपश्यी बने। वह इन्हे धुनकर क्षय करे।

५७ क्या अरति है, क्या आनन्द है ? इन्हे ग्रहण किये बिना विचरण करे।

५८. आलीन-गुप्त (त्रिगुप्त) पुरुप सभी प्रकार के हास्य का परित्याग कर परिव्रजन करे।

५९ हे पुरुप ! तुम ही तुम्हारे मित्र हो। फिर बाहरी मित्र की इच्छा क्यो करते हो !

६० जो उच्चालय (जीवात्मा) को जानता है, वह दूरालय (परमात्मा) को जानता है। जो दूरालय (परमात्मा) को जानता है, वह उच्चालय (जीवात्मा) को जानता है।

६१. पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ, एवं दुक्खा पमोक्खसि ।

६२. पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि ।

६३. सच्चस्स आणाए उवट्ठिए से मेहावी मारं तरइ ।

६४. सहिए धम्ममादाय, सेय समणुपस्सइ ।

६५. दुहओ जीवियस्स, परिवंदण-माणण-पूयणाए, जंसि एगे पमादेंति ।

६६. सहिए दुक्खमत्ताए पुट्ठो णो झंझाए ।

६७. पासिमं दविए लोयालोय-पवंचाओ मुच्चइ ।

—त्ति बेमि

चउत्थो उद्देसो

६८. से वंता कोहं च, माणं च, मायं च, लोभं च ।

६९. एयं पासगस्स दंसणं उवरयसत्थस्स पलियंतकरस्स ।

७० आयाणं सगडब्भि ।

७१. जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ,
जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ ।

७२. सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्थि भयं ।

६१ हे पुरुष ! आत्मा का ही अभिनिग्रह कर। ऐसा करने से तू दुःखों से छूट जाएगा।

६२ हे पुरुष ! सत्य को ही जान।

६३ जो सत्य की आज्ञा मे उपस्थित है, वह मेधावी मार/मृत्यु से तर जाता है।

६४ वह धर्मयुक्त होकर श्रेय का अनुपश्यन करता है।

६५ जीवन को [राग और द्वेष से] द्विहत करने वाले कुछ साधक परिवन्दन, मान और पूजा के लिए प्रमाद करते है।

६६ दुःख-मात्रा मे स्पृष्ट साधक झुंझलाहट न करे।

६७ द्रव्य-द्रष्टा (तत्त्व-द्रष्टा) लोक-अलोक के प्रपंच से मुक्त हो जाता है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

६८ वह क्रोध, मान, माया और लोभ का वमन करने वाला है।

६९ यह शस्त्र मे उपरत और कर्म से परे द्रष्टा का दर्शन है।

७० गृहीत कर्मो का भेदन करता है।

७१ जो एक [तत्त्व] को जानता है, वह सब [तत्सम्बन्धित गुणों] को जानता है। जो सबको जानता है, वह एक को जानता है।

७२ प्रमत्त को सभी ओर से भय है, अप्रमत्त को सभी ओर से भय नहीं है।

७३. जे एगं नामे, से बहुं नामें,
जे बहु नामे, से एगं नामे ।

७४ दुक्ख लोयस्स जाणित्ता, वता लोगस्स संजोग, जंति धीरा महाजाणं ।

७५. परेण पर जंति ।

७६. नावकंखंति जीवियं ।

७७. एग विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ,
पुढो विगिंचमाणे एग विगिंचइ ।

७८. सड्ढी आणाए मेंहावी ।

७९. लोग च आणाए अभिसमेच्चा अकुओभय ।

८०. अत्थि सत्थं परेण पर, णत्थि असत्थं परेण परं ।

८१ जे कोहदंसी से माणदंसी ।
जे माणदसी से मायदसी ।
जे मायदसी से लोभदसी ।
जे लोभदंसी से पेज्जदसी ।
जे पेज्जदसी से दोसदसी ।
जे दोसदसी से मोहदसी ।
जे मोहदंसी से गब्भदंसी ।
जे गब्भदंसी से जम्मदंसी ।
जे जम्मदसी से मारदसी ।
जे मारदसी से निरयदंसी ।
जे निरयदसी से तिरियदंसी ।
जे तिरियदसी से दुक्खदसी ।

७३ जो एक को नमाता है, वह बहुतो को नमाता है।
जो बहुतो को नमाता है, वह एक को नमाता है।

७४ धीर-पुरुष लोक के दुःख को जानकर, लोक के सयोग का वमन कर महा-यान को प्राप्त करते है।

७५. वे श्रेय से श्रेय की ओर जाते है।

७६ वे जीवन की आकाक्षा नही करते।

७७. एक (कर्म/कषाय) का क्षय करने वाला अनेक (कर्मो/कषायो) का क्षय करता है। अनेक का क्षय करने वाला एक का क्षय करता है।

७८. आज्ञा मे श्रद्धा करने वाला मेधावी है।

७९ आज्ञा से लोक को जानकर पुरुष भय-मुक्त हो जाता है।

८० शस्त्र तीक्ष्ण-से-तीक्ष्ण है। अशस्त्र तीक्ष्ण-से-तीक्ष्ण नही है।

८१ जो क्रोधदर्शी है, वह मानदर्शी है।
जो मानदर्शी है, वह मायादर्शी है।
जो मायादर्शी है, वह लोभदर्शी है।
जो लोभदर्शी है, वह प्रेम/रागदर्शी है।
जो प्रेम/रागदर्शी है वह द्वेषदर्शी है।
जो द्वेषदर्शी है, वह मोहदर्शी है।
जो मोहदर्शी है, वह गर्भदर्शी है।
जो गर्भदर्शी है, वह जन्मदर्शी है।
जो जन्मदर्शी है, वह मृत्युदर्शी है।
जो मृत्युदर्शी है, वह नरकदर्शी है।
जो नरकदर्शी है, वह तिर्यंचदर्शी है।
जो तिर्यंचदर्शी है, वह दुःखदर्शी है।

८२. से मेहावी अभिनिवट्टेज्जा कोहं च, माणं च, मायं च, लोहं च, पेज्जं च, दोस च, मोह च, गब्भ च, जम्म च, मार च, नरग च, तिरिय च, दुक्खं च।

८३. एय पासगस्स दंसण उवरयसत्थस्स पलियतकरस्स ।

८४ आयाण णिसिद्धा सगडब्भि ।

८५ किमत्थि उवाही पासगस्स ण विज्जइ ?
णत्थि ।

—त्ति बेमि ।

८२. वह मेधावी क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम/राग, द्वेष, मोह, गर्भ, जन्म, मार/मृत्यु, नरक, तिर्यंच और दु:ख से निवृत्त हो।

८३ यह शस्त्र-उपरत और कर्म-द्रष्टा का दर्शन है।

८४. गृहीत को रोककर भेदन करे।

८५. क्या द्रष्टा की कोई उपाधि है या नहीं?
नहीं है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चउत्थं अज्झयणं

सम्मत्तं

चतुर्थ अध्ययन

सम्यक्त्व

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'सम्यक्त्व' है। अध्याय की दृष्टि से यह चौथा चरण है, किन्तु अध्यात्म की दृष्टि से पहला। यह अर्हत्-दर्शन की वर्णमाला का प्रथम अक्षर है। यही जैनत्व की अभिव्यक्ति है। यह वह चौराहा है, जिसमे अध्यात्म-जगत के कई राज-मार्ग मिलते है। अत सम्यक्त्व के लिए पराक्रम करना महावीर के महापथ का अनुगमन/अनुमोदन है।

'सम्यक्त्व' साधुता और ध्रुवता की दिव्य आभा है। सम्यक्त्व और साधुता के मध्य कोई द्वैत-रेखा नहीं है। साधु सम्यक्त्व के बल पर ही तो ससार की चार-दिवारी को लाँघता है। इसलिए सम्यक्त्व साधु के लिए सर्वोपरि है।

सत्यदर्शी महावीर सम्यक्त्व की ही पहल करते हैं। उनकी दृष्टि मे सम्यक्त्व विशेषणों का विशेषण है, आभूषणों का भी आभूषण है। यह सत्य की गवेषणा है। साधक आत्म-गवेषी है। आत्मा ही उसके लिए परम-सत्य है। इसलिए सम्यक्त्व साधक का सच्चा व्यक्तित्व है। उसकी आँखों मे सदा अमरता की रोशनी रहती है। कालजयी क्षणों मे जीने के लिए ही उसका जीवन समर्पित है। कालजयता के लिए अस्तित्व का अभिज्ञान अनिवार्य है। अस्तित्व शाश्वत का घरेलु नाम है। सम्यक्त्व उस शाश्वत की ही पहिचान है।

सम्यक्त्व आत्म-विकास की प्राथमिक कक्षा है। वस्तु-स्वरूप के बोध का नाम सम्यक्त्व है। बिना सम्यक्त्व के साधक वस्तु मात्र की अस्मिता का सम्मान कैसे करेगा? पदार्थो का श्रद्धान कैसे किलकारियाँ भर सकेगा? अहिंसा और करुणा कैसे सजीवित हो पायेगी? अध्यात्म की स्नातकोत्तर सफलताओं को अर्जित करने के लिए सम्यक्त्व की कक्षा मे प्रवेश लेना अपरिहार्य है।

साधक की सबसे बडी सम्पदा सम्यक्त्व ही है। आत्म-समीक्षा के वातावरण मे इसका पल्लवन होता है। सम्यक्त्व अन्तर्दृष्टि है। इसका विमोचन बहिर्दृष्टियों को सतुलित मार्गदर्शन है। फिर वे सत्य का आग्रह नहीं करतीं, अपितु सत्य का ग्रहण करती है। माटी-सोना, हर्ष-विषाद के तमाम द्वन्द्वों से वे उपरत हो जाती

हैं। इसी से प्रवर्तित होती है सत्य की शोध-यात्रा। विना सम्यक्त्व के अध्यात्म-मार्ग की शोभा कहाँ? भला, ज्वर-ग्रस्त को माधुर्य कभी रसास्वादित कर सकता है। असम्यक्त्व/मिथ्यात्व जीवन का ज्वर नहीं तो और क्या है? सचमुच, जिसके हाथ मे सम्यक्त्व की मशाल है, उसके सारे पथ ज्योतिर्मय हो जाते हैं।

प्रस्तुत अध्याय सयमित एव सवरित होने की प्रेरणा देता है। जिसने मन, वचन और काया के द्वार बन्द कर लिए हैं, वही सत्य का पारदर्शी और मेधावी साधक है। उसे इन द्वारों पर अप्रमत्त चौकी करनी होती है। उसकी आँखों की पुतलियाँ अन्तर्जगत के प्रवेश-द्वार पर टीकी रहती हैं। वहिर्जगत के अतिथि इसी द्वार से प्रवेश करते हैं। अयोग्य और अनचाहे अतिथि द्वार खटखटाते जरूर है, किन्तु वह तमाम दस्तकों के उत्तर नहीं देता, मात्र सम्यक्त्व की दस्तक सुनता है। वह उन्हीं लोगों की अगवानी करता है, जिससे उसके अतर-जगत का सम्मान और गौरव वर्धन हों।

अस्तित्व का समग्र व्यक्तित्व सम्यक्त्व की खुली खिडकी से ही अवलोक्य है। अध्यात्म का अध्येता सम्यक्त्व से अपरिचित रहे, यह सभव नहीं है। व्यक्ति के सुपुप्त विवेक मे हरकत पैदा करने वाला एकमात्र सम्यक्त्व ही है। यथार्थता का तट, सम्यक्त्व का द्वीप मिथ्यात्व के पार है। हृदय-शुद्धि, अहिंसा, सवर, कषाय-निग्रह एव सयम की पतवारों के सहारे असद्-सागर को पार किया जा सकता है।

स्वस्थ मन के मच पर ही अध्यात्म के आसन की बिछावट होती है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए मन की निरोगिता आवश्यक है और मन की निरोगिता के लिए कपायों का उपवास उपादेय है। विपयों मे स्वय की निवृत्ति ही उपवास का सूत्रपात है। क्षमा, नम्रता और सतोप के द्वारा मन को स्वास्थ्य-लाभ प्रदान किया जा सकता है।

प्रस्तुत अध्याय अनुत्तरयोगी महावीर के अनुभवों की अनुगूँज है। सम्यक्त्व का सिद्धान्त सत्य की न्याय-तुला है। जीवन की मौलिकताओं और नैतिक प्रतिमानों को उज्ज्वलतर बनाने के लिए यह सिद्धान्त अप्रतिम सहायक है। सचमुच, जिसके हाथ सम्यक्त्व-प्रदीप से शून्य है, वह मानो चलता-फिरता 'शव' है, अँधियारी रात मे दिग्भ्रान्त-पान्थ है। साधक के कदम वढे जिन-मग पर, अन्धकार से प्रकाश की ओर। मुक्त हो जीवन की उज्ज्वलता, मिथ्यात्व की अँधेरी मुट्ठी से।

पढमो उद्देसो

१. से बेमि—

जे अईया, जे य पडुप्पन्ना, जे य आगमेस्सा अरहंता भगवंतो ते सव्वे एवमाइक्खति, एवं भासति, एव पण्णवेंति, एवं परूवेंति—सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेत्तव्वा, ण परियावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा ।

२. एस धम्मे सुद्धे ।

३. णिइए सासए समिच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेइए ।

४. तं जहा—

उट्ठिएसु वा, अणुट्ठिएसु वा, उवट्ठिएसु वा, अणुवट्ठिएसु वा, उवरयदंडेसु वा, अणुवरयदंडेसु वा, सोवहिएसु वा, अणोवहिएसु वा, संजोगरएसु वा, असंजोगरएसु वा, तच्चं चेयं ।

५ तहा चेय, अस्सिं चेयं पवुच्चइ ।

६. तं आइत्तु ण णिहे ण णिक्खिवे, जाणित्तु धम्मं जहा तहा ।

७. दिट्ठेहिं णिव्वेयं गच्छेज्जा ।

८. णो लोगस्सेसणं चरे ।

प्रथम उद्देशक

१. वही मै कहता हूँ—

जो अतीत, प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) और भविष्य के अर्हन्त भगवन्त हैं, वे सभी इस प्रकार कहते है, इस प्रकार भाषण करते हैं, इस प्रकार प्रज्ञापन करते हैं, प्ररुपित करते है कि सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव, सभी सत्वो का न हनन करना चाहिये, न आज्ञापित करना चाहिये, न परिगृहीत करना चाहिये, न परिताप देना चाहिये, न उत्पाद/प्राण-व्यपरोपण करना चाहिये।

२. यह शुद्ध धर्म है।

३ लोक को नित्य, शाश्वत जानकर खेदज्ञो(ज्ञानियों) के द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है।

४ जैसे कि—

उत्थित होने पर या अनुत्थित होने पर, दड से उपरत होने पर अथवा दड से अनुपरत होने पर, सोपाधिक होने पर अथवा अनोपाधिक होने पर, सयोगरत होने पर अथवा असयोगरत होने पर, यह तत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

५. जैसा तथ्य है, वैसा प्ररुपित किया गया।

६. उस धर्म को यथातथ्य ग्रहण कर एव जानकर न स्निग्ध हो न विक्षिप्त।

७ दृष्ट कैसे निर्वेद रहे।

८. लोकैषणा न करे।

९. जस्स णत्थि इमा जाई, अण्णा तस्स कओ सिया ?

१०. दिट्ठं सुयं मयं विण्णायं, जमेयं परिकहिज्जइ ।

११. समेमाणा पलेमाणा, पुणो-पुणो जाइं पकप्पेंति ।

१२. अहो य राओ य जयमाणे, धीरे सया आगयपण्णाणे ।
पमत्ते वहिया पास, अप्पमत्ते सया परक्कमेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

१३. जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा,
जे अणासवा ते अपरिस्सवा, जे अपरिस्सवा ते अणासवा ।
—एए पए सवुज्झमाणे, लोयं च आणाए अभिसमेच्चा पुढो पवेइयं ।

१४. आघाइ णाणी इह माणवाण ससारपडिवण्णाण संवुज्झमाणाणं विण्णाणपत्ताण ।

१५ अट्टा वि संता अदुवा पमत्ता, अहासच्चमिण त्ति बेमि ।

१६. नाणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि, इच्छापणीया वंकाणिकेया ।
कालग्गहीआ णिचए णिविट्ठा, पुढो-पुढो जाइं पकप्पयति ।

१७. इहमेगेसिं तत्थ-तत्थ सयवो भवइ ।

९. जिसे यह जाति (लोकैषणा-बुद्धि) नही है, उसके लिए अन्य क्या है ?

१०. जो यह कहा जाता है वह दृष्ट, श्रुत, मत्त और विज्ञात है।

११ आसक्त एवं लीन होने वाले पुरुष पुनः पुन उत्पन्न होते रहते है।

१२. रात-दिन प्रयत्नशील धीर-पुरुष आगत प्रज्ञा से प्रमत्त को सदा बहिर्मुख देखे और सदा अप्रमत्त होकर पराक्रम करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

१३. जो आस्रव हैं, वे परिस्रव हैं। जो परिस्रव हैं, वे आस्रव है।
जो अनास्रव है, वे अपरिस्रव हैं। जो अपरिस्रव है, वे अनास्रव हैं।
—इस पद का ज्ञाता लोक को आज्ञा से जानकर पृथक-पृथक प्रवेदित करे।

१४. ससार-प्रतिपन्न, सबुध्यमान, विज्ञान-प्राप्त मनुष्यों के लिए यह उपदेश दिया है।

१५ प्राणी आर्त भी हैं और प्रमत्त भी। यह यथासत्य है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

१६ मृत्यु-मुख के नाना मार्ग हैं — इच्छा-प्रणीत, वकानिकेत/कुटिल, कालगृहीत एव सग्रह-निविष्ट। [इन मार्गों पर चलने वाला] पृथक्-पृथक जातियों/जन्मो को प्राप्त करता है।

१७ इस संसार मे कुछ लोगो के लिए उन स्थानो के प्रति मानो सस्तव/लगाव होता है।

१८. अहोववाइए फासे पडिसंवेयंति ।

१९. चिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं, चिट्ठं परिचिट्ठइ ।

२०. अचिट्ठं कूरेहिं कम्मेहि, णो चिट्ठं परिचिट्ठइ ।

२१. एगे वयंति अदुवा वि णाणी ?
णाणी वयंति अदुवा वि एगे ?

२२. आवंती केयावंती लोयंसि समणा य माहणा य पुढो विवायं वयंति—से दिट्ठं च णे, सुयं च णे, मयं च णे, विण्णायं च णे, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ सुपडिलेहियं च णे—सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता हंतव्वा, अज्जावेयव्वा परिघेत्तव्वा, परियावेयव्वा, उद्दवेयव्वा । एत्थ वि जाणह णत्थित्थ दोसो, अणारियवयणमेयं ।

२३ तत्थ जे आरिया, ते एवं वयासी—से दुद्दिट्ठं च भे, दुस्सुयं च भे, दुम्मयं च भे, दुव्विण्णायं च भे, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ दुप्पडिलेहियं च भे, जं णं तुब्भे एवं आइक्खह, एवं भासह, एवं परूवेह, एवं पण्णवेह—सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता हंतव्वा, अज्जावेयव्वा, परिघेतव्वा, परियावेयव्वा, उद्दवेयव्वा । एत्थ वि जाणह णत्थित्थ दोसो, अणारियवयणमेयं ।

२४. वयं पुण एवमाइक्खामो, एवं भासामो, एवं परूवेमो, एवं पण्णवेमो—सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परियावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा एत्थ वि जाणह णत्थित्थ दोसो, आरियवयणमेयं ।

१८ वे औपपातिक-स्पर्श का प्रतिसंवेदन करते हैं।

१६ क्रूर कर्मो मे स्थित पुरुष उन स्थानो मे ही स्थित होता है।

२०. क्रूर कर्मो मे अस्थित पुरुष उन स्थानो मे स्थित नही होता है।

२१ यह और कोई कहता है या ज्ञानी भी ?
ज्ञानी कहते है अथवा और कोई भी ?

२२. लोक मे कुछेक श्रमण और ब्राह्मण अलग-अलग विवाद करते हैं। वह मैंने देखा, मैंने सुना, मैंने मान्य किया और मैंने विज्ञात किया है। ऊर्ध्व, अधो, सभी दिशाओ मे प्रतिलेखित किया है कि सभी प्राणी, सभी जीव, सभी भूत, सभी सत्त्वो का हनन करना चाहिये, आज्ञापित करना चाहिये, परिघात करना चाहिये, परिताप करना चाहिये और विमोचन करना चाहिये। इसमे कोई दोष नही है, ऐसा समझे। यह अनार्यों का वचन है।

२३ इनमे जो आर्य हैं उन्होने ऐसा कहा — वह तुम्हारे लिए दुर्दिष्ट है, तुम्हारे लिए दु श्रुत है, तुम्हारे लिए दुर्मान्य है और तुम्हारे लिए दुर्विज्ञात है। ऊर्ध्व, अध और तिर्यक् सभी दिशाओ मे तुम्हारे लिए दुष्प्रतिलेख है। यदि तुम ऐसा आख्यान करते हो, ऐसा भाषण करते हो, ऐसा प्ररूपित करते हो, ऐसा प्रज्ञापित करते हो — सभी जीव, सभी भूत, सभी सत्त्व का हनन करना चाहिये, आज्ञापित करना चाहिये, परिघात करना चाहिये, परिताप करना चाहिये और विमोचन करना चाहिये। इसमे कोई दोष नही है ऐसा समझे। यह अनार्यों का वचन है।

२४ पुन हम सब इस प्रकार आख्यान करते हैं, इस प्रकार भाषण करते हैं, इस प्रकार प्ररूपण करते है, इस प्रकार प्रज्ञापित करते है कि सभी प्राणियो, सभी जीवो, सभी भूतो, सभी सत्त्वो का न हनन करना चाहिये, न आज्ञापित करना चाहिये, न परिघात करना चाहिये, न परिताप करना चाहिये। इसमे कोई दोष नही है, ऐसा समझे। यह आर्यवचन है।

२५ पुव्वं निकाय समयं पत्तेयं पुच्छिस्सामो—हंभो पवाइया ! किं भे सायं दुक्खं असाय ?

२६. समिया पडिवण्णे यावि एवं बूया—सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाण, सव्वेसिं सत्ताण असाय अपरिणिव्वाण महब्भय दुक्ख ।

—त्ति बेमि ।

तइओ उद्देसो

२७. उवेहि एण बहिया य लोयं, से सव्वलोगमि जे केइ विण्णू ।
अणुवीइ पास णिक्खित्तदडा, जे केइ सत्ता पलिय चयति ।।

२८. णरा मुयच्चा धम्मविउत्ति अंजू ।

२९. आरंभज दुक्खमिणति णच्चा, एवमाहु समत्तदंसिणो ।

३०. ते सव्वे पावाइया दुक्खस्स कुसला परिण्णमुदाहरंति ।

३१. इय कम्मं परिण्णाय सव्वसो ।

३२. इह आणाकखी पंडिए अणिहे एगमप्पाण संपेहाए धुणे सरीरं, कसेहि अप्पाणं, जरेहि अप्पाणं ।

३३. जहा जुण्णाइं कट्ठाइं, हव्ववाहो पमत्थइ एवं अत्तसमाहिए अणिहे ।

२५ सर्वप्रथम प्रत्येक समय (सिद्धान्त) को जानकर मैं पूछूँगा हे प्रवादी ! तुम्हारे लिए शाता दुख है या अशाता ?

२६ समता प्रतिपन्न होने पर उन्हे ऐसा कहना चाहिये—
सभी प्राणियों, सभी जीवों, सभी भूतो और सभी सत्त्वों के लिए असाता अपरिनिर्वाण (अनिष्ट) महाभय रूप दुख है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तृतीय उद्देशक

२७, वाह्य लोक की उपेक्षा कर। जो कोई ऐसा करता है, वह सम्पूर्ण लोक में विष्णु/विज्ञ होता है। अनुवीची/अनुचिन्तन करके देख—हिंसा का त्याग करने वाला जीव ही पलित/कर्म को क्षीण करता है।

२८. मृत/मुक्त-पुरुष की अर्चा करने वाला धर्मविद् एव ऋजु है।

२९ यह दुख हिंसज है, ऐसा जाननेवाला समत्वदर्शी कहा गया है।

३० वे सभी कुशल प्रवचनकार दुख की परिज्ञा को कहते है।

३१ इस प्रकार सभी ओर से कर्म परिज्ञात है।

३२. इस संसार मे आज्ञाकाक्षी पडित अस्निग्ध/रागरहित एक ही आत्मा की सप्रेक्षा करता हुआ शरीर को धुने, स्वय को कसे, अपने को जर्जर करे।

३३. जिस प्रकार जीर्ण काष्ठ को अग्नि जला देती है, उसी प्रकार आत्म-समाहित पुरुष राग रहित होता है।

३४. विगिंच कोहं अविकंपमाणे, इम णिरुद्धाउयं संपेहाए दुक्खं च जाण अदुवागमेस्स ।

३५ पुढो फासाइं च फासे, लोयं च पास विप्फंदमाणं ।

३६. जे णिव्वुडा पावेहिं कम्मेहिं, अणियाणा ते वियाहिया, तम्हा अइविज्जो णो पडिसंजलिज्जासि ।

—त्ति बेमि

चउत्थो उद्देसो

३७. आवीलए पवीलए निप्पीलए जहित्ता पुव्वसंजोगं, हिच्चा उवसमं ।

३८. तम्हा अविमणे वीरे सारए समिए सहिए सया जए ।

३९. दुरणुचरो मग्गो वीराणं अणियट्टगामीण ।

४०. विगिंच मंस-सोणिय ।

४१. एस पुरिसे दविए वीरे ।

४२. आयाणिज्जे वियाहिए, जे धुणाइ समुस्सयं, वसित्ता बंभचेरंसि ।

४३ णेत्तेहिं पलिच्छिण्णेहिं, आयाणसोय-गढिए बाले ।

४४. अव्वोच्छिण्णबंधणे, अणभिक्कंतसंजोए ।

३४ इस आयु के निरोध की सप्रेक्षा कर निष्कम्प होता हुआ क्रोध को छोड एव अनागत दु खो को जान।

३५. विभिन्न फामो/जालो मे फँसे हुए विस्पन्दमान/स्वच्छन्दी लोक को देख।

३६. जो पापकर्मो से निवृत्त हैं, वे अनिदान कहे गये है। अत प्रबुद्ध-पुरुप सज्वलित न हो।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

३७ पूर्व सयोग को छोडकर, उपशम को ग्रहण कर [शरीर को] आपीडित, प्रपीडित तथा निष्पीडित करे।

३८. इसलिए अविमन वीर-पुरुप सदा सार तत्त्व मे समिति-सहित विजयी बने।

३९ अनिवृतगामियो के लिए वीरो का मार्ग दुष्चर है।

४० मास एव रुधिर को छोड।

४१. यह पुरुप द्रविक/दयालु एव वीर है।

४२. जो ब्रह्मचर्य मे वास करके शरीर को धुनता है, वह आज्ञापित कहा गया है।

४३ नेत्र-विपयो मे आसक्त एव आगत स्रोतो मे गृद्ध पुरुप बाल है।

४४ वह बन्धन-मुक्त नही है, सयोग-रहित नही है।

४५. तंसि अवियाणओ आणाए लंभो णत्थि ।

—त्ति बेमि ।

४६. जस्स णत्थि पुरा पच्छा, मज्झे तस्स कुओ सिया ?

४७ से हु पण्णाणमंते बुद्धे आरम्भोवरए, सम्ममेयति ।

४८. पासह जेण बध वह घोरं, परियावं च दारुण ।

४९. पलिच्छिदिय बाहिरंग च सोय, णिक्कम्मदंसी इह मच्चिएहिं, कम्माणं सफल दट्ठुं, तओ णिज्जाइ वेयवी ।

५०. जे खलु भो ! वीरा समिया सहिया सया जया संघडदसिणो आओवरया ।

५१. अहा-तह लोय ।

५२. उवेहमाणा, पाईण पडीणं दाहिणं उईण इय सच्चंसि परिचिट्ठिसु ।

५३. साहिस्सामो णाण वीराण समियाणं सहियाण सया जयाणं संघडदसिणं आओवरयाण अहातह लोय ।

५४. समुवेहमाणाण किमत्थि उवाही ?

५५. पासगस्स ण विज्जइ ?
णत्थि ।

—त्ति बेमि ।

४५. अविज्ञायक/अज्ञानी-पुरुष अन्धकार मे पडा हुआ आज्ञा का लाभ नही ले सकता।

—ऐसा मै कहता हूँ।

४६ जिसका पूर्व-पश्च नहीं है, उसका मध्य क्या होगा ?

४७. जो सम्यक्त्व को खोजता है, वही प्रज्ञावान, बुद्ध और हिंसा से उपरत है।

४८ तू देख! जिसके कारण बन्ध, घोर वध, और दारुण परिताप होता है।

४९ इस मृत्युलोक में निष्कर्मदर्शी वेदज्ञ-पुरुष बाहरी स्रोतो को आच्छादित करता हुआ कर्मो के फल को देखकर निवृत्त हो जाता है।

५० अरे, वे ही पुरुष हैं, जो समितिसहित, सदा विजयी, सघटदर्शी/सम्यक्त्वदर्शी, आत्म-उपरत है।

५१. लोक यथास्थित है।

५२ पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर की उपेक्षा करता हुआ सत्य मे स्थित रहे।

५३ मै वीर, समिति-सहित, विजयी, सघटदर्शी एव आत्म-उपरत पुरुषो के ज्ञान को कहूँगा।

५४. यथास्थित लोक की उपेक्षा करने वालो के लिए उपाधि से क्या प्रयोजन ?

५५ तत्त्वद्रष्टा के लिए [उपाधि से प्रयोजन] है या नही ?
नही है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

पंचमं अज्झयणं

लोगसारो

पंचम अध्ययन

लोकसार

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'लोकसार' है। धर्म/ज्ञान/सयम/निर्वाण ही निखिल लोक का नवनीत है। आत्मा की मौलिकताएँ प्रच्छन्न हैं। उन्हे अनावरित एव निरभ्र करना ही प्रस्तुत अध्याय का अन्तर्स्वर है। अत यह अध्याय आत्महितैषी पुरुष का व्यक्तित्व है, अध्यात्म की गुणवत्ता का आकलन है।

अध्यात्म आत्म उपलब्धि का अनुष्ठान है। अनुष्ठाता को स्वय का दीपक स्वय को ही बनना पडता है। 'स्वय' 'अन्य' का ही एक अग है। अत दूसरों मे स्वय की और स्वय मे दूसरों की प्रतिध्वनि सुनना अस्तित्व का अभिनन्दन है। दूसरों मे स्वय का अवलोकन ही अहिंसा का विज्ञान है। सम्पूर्ण अस्तित्व का अन्तर्सम्बन्ध है। क्षुद्र से क्षुद्र जीव मे भी हमारी जैसी आत्मचेतना है। अत किसी को दुख पहुँचाना स्वय के लिए दुख का निर्माण करना है। सुख का वितरण करना अपने लिए सुख का निमन्त्रण है। जीव का वध अपना ही वध है। जीव की करुणा अपनी ही करुणा है। अत अहिंसा का अनुपालन स्वय का सरक्षण है।

अहिंसा और निर्विकारिता का नाम ही अध्यात्म है। साधक अध्यात्म का अध्येता होता है। अत हिंसा और विकारों से उसकी कैसी मैत्री? विकार/वासना/भोग-सम्भोग स्वय की अ-ज्ञान दशा है। साधक तो 'आगमचक्षु/ज्ञानचक्षु' कहा जाता है, अत इनका अनुगमन अन्धत्व का समर्थन है।

प्रस्तुत अध्याय अप्रमाद का मार्ग दरशाता है। साधक का परिचय-पत्र अप्रमाद ही है। अप्रमाद और अपरिग्रह दोनों जुडवा हैं। भगवान् ने मूर्च्छा को परिग्रह कहा है। मूर्च्छा का ही दूसरा नाम प्रमाद है। प्रमाद हिंसा का स्वामी है। अत मूर्च्छा से उपरत होना अध्यात्म की सही आराधना है।

मूर्च्छा एक अन्धा मोह है। वह अनात्म को आत्मतत्त्व के स्तर पर ग्रहण करता है। भगवान् की भाषा मे यह मिथ्यात्व का मचन है। आत्मतत्त्व और अनात्म-तत्त्व का मिलन विजातीयों का सगम है। दोनों मे विभाजन-रेखा खींचना ही भेद-विज्ञान है।

साधक आत्मदर्शन के लिए सर्वतोभावेन समर्पित होता है। अत शारीरिक मूर्च्छा से ऊपर उठना भेद-विज्ञान की क्रियान्विति है। शरीर और आत्मा के मध्य युद्ध चल रहा है। दोनों के बीच युद्ध-विराम की स्थिति का नाम ही उपवास है। जीवन, जन्म एव मृत्यु के बीच का एक स्वप्नमयी विस्तार है। स्वप्न-मुक्ति का आन्दोलन ही सयास है। जीवन एव जगत् को स्वप्न मानना अनासक्ति प्राप्त करने की सफल पहल है। अनासक्ति/अमूर्च्छा साधना-जगत् की सर्वोच्च चोटी है और इसे पाने के लिए भौतिक सुख-सुविधाओं की नश्वरता का हर क्षण स्मरण करना स्वय मे अध्यात्म का आयोजन है।

साधक सत्य-पथ का पथिक होता है। सत्य के साथ सघर्ष विना अनुमति के हमसफर हो जाता है। साधक विराट् सकल्प का धनी होता है। उसे सघर्ष/परीषह से घबराना नहीं चाहिये, अपितु सहिष्णुता के वल पर उसे निष्फल और अपग कर देना चाहिये। भगवान् ने कहा है कि परीषहों, विघ्नों को न सहना कायरता है। परीषह-पराजय सकल्प-शैथिल्य की अभिव्यक्ति है। साध्य के बीज को अकुरित करने के लिए अनुकूलता का जल ही आवश्यक नहीं है, अपितु परीषहमूलक प्रतिकूलता की धूप भी अपरिहार्य है। दोनों के सहयोग से ही वीज का वृक्ष प्रकट होता है।

साधक सहनशील होता है, अत वह निर्विवादत समत्वयोगी भी होता है। भगवान् ने समत्व की गोद मे ही धर्म का शैशव पाया है। साधनागत अनुकूलताएँ बनाए रखने के लिए धर्मसघ का अनुशासन भी उपादेय है।

साधना के इन विभिन्न आयामों से गुजरना अनामय लक्ष्य को साधना है। आत्म-विजय ही परम लक्ष्य है। भगवान् ने इसे त्रैलोक्य की सर्वोच्च विजय माना है। शरीर, मन और इन्द्रियों को निगृहीत करने से ही यह विजय साकार होती है। फिर वह स्वय ही सर्वोपरि सम्राट होता है। मुक्त हो जाता है हर सम्भावित दासता से। इस विमल स्थिति का नाम ही मोक्ष है।

मोक्ष चेतना की आखिरी ऊँचाई है। उसके बारे मे किया जाने वाला कथन प्राथमिक सूचना है, शिशु की तोतली वोली मे बारहखडी है। मोक्ष तो सबके पार है। भाषा, तर्क, कल्पना और बुद्धि के चरण वहाँ तक जा नहीं सकते। वहाँ तो है सनातन मौन, निर्वाण की निर्धूम ज्योत।

प्रथम उद्देशक

१. कुछ मनुष्य लोक मे विपर्यास को प्राप्त होते है।

२. वे इन [जीव-निकायो] मे प्रयोजनवश या निष्प्रयोजन विपर्यास को प्राप्त होते हैं।

३. उनकी कामनाएँ विस्तृत होती हैं।

४. अत वह मृत्यु के समीप है।

५. चूं कि वह मृत्यु के समीप है, इसलिए वह [अमरत्व मे] दूर है।

६ वह [निष्काम-पुरुष] न ही [मृत्यु के] समीप है, न ही [अमरत्व से] दूर है।

७. वह कुशाग्र-स्पर्शित ओसबिन्दु को वायु-निर्वर्तित देखता हे, किन्तु मद बाल/अज्ञानी पुरुष इसे जान नहीं पातर।

८ बाल/अज्ञानी-पुरुष क्रूर कर्म करता है।

९ मूढ-पुरुष उससे उत्पन्न दुःख से विपर्यास करता है।

१०. मोह के कारण गर्भ/जन्म मरण प्राप्त करता है।

११. यहां मोह पुन. पुन होता है।

१२ संसयं परियाणओ, ससारे परिण्णाए भवइ,
ससयं अपरियाणओ, ससारे अपरिण्णाए भवइ ।

१३. जे छेए से सागारियं ण सेवइ ।

१४. कट्टु एवं अवियाणओ, बिइया मंदस्स बालया ।

१५. लद्धा हुरत्था पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणयाए ।

—त्ति बेमि ।

१६. पासह एगे रूवेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे, एत्थ फासे पुणो-पुणो ।

१७. आवती केयावती लोयसि आरंभजीवी, एएसु चेव आरभजीवी ।

१८. एत्थ वि बाले परिच्चमाणे रमइ पावेहिं कम्मेहि, असरणे सरण ति मण्णमाणे ।

१९. इहमेगेसि एगचरिया भवइ—से बहुकोहे बहुमाणे बहुमाए बहुलोहे बहुरए बहुनडे बहुसढे बहुसकप्पे, आसवसक्की पलिउच्छण्णे, उट्ठियवाय पवयमाणे मा मे केइ अदक्खू ।

२० अण्णाण-पमाय-दोसेण, सययं मूढे धम्म णाभिजाणइ ।

२१. अट्टा पया माणव ! कम्मकोविया जे अणुवरया, अविज्जाए पलिमोक्खमाहु, आवट्टमेव अणुपरियट्टंति ।

—त्ति बेमि ।

१२. संशय के परिज्ञान से संसार परिज्ञात होता है।
सशय के अपरिज्ञान से ससार अपरिज्ञात होता है।

१३. जो छेक/बुद्धिमान् है, वह सागार/गृहवास/सम्भोग का सेवन नही करता।

१४. सेवन करके भी अविज्ञायक कहना मन्दपुरुप की दोहरी मूर्खता है।

१५ प्राप्त अर्थों (मैथुन-सार) को प्रतिलेख कर, जानकर उसका अनासेवन आज्ञापित करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१६ देखो! कुछ लोग रूप में गृद्ध हैं। वे यहाँ परिणीयमान होकर स्पर्श/दुःख को प्राप्त होते है।

१७ कुछ लोग लोक मे हिंसाजीवी हैं। वे इन (विषयो) मे [आसक्तिवश] ही हिंसाजीवी है।

१८ यहाँ बाल-पुरुप अशरण को शरण मानता हुआ, विपयों मे छटपटाता हुआ पाप-कर्मों मे रमण करता है।

१९. कुछ साधु एकचारी होते है। वे बहुक्रोधी, बहुमानी, बहुमायावी, बहुनटी, बहुशठी, बहुसकल्पी, आस्रव मे आसक्त, कर्म मे आच्छन्न, [विपयो मे] उद्यमशील और प्रवृत्तमान है। मुझे कोई देख न ले [इस भय से छिपकर अनाचरण करते हैं।]

२० सतत् मूढ पुरुप अज्ञान, प्रमाद और दोप के कारण धर्म को नही जानता।

२१ हे मानव! जो लोग आर्त, कर्म-कोविद, अनुपरत और अविद्या से मोक्ष होना कहते है, वे आवर्त/ससारचक्र मे अनुपरिवर्तन करते है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

बीओ उद्देसो

२२. आवती केयावती लोयंसि अणारंभजीवी, एएसु चेव अणारंभजीवी ।

२३. एत्थोवरए तं झोसमाणे अयं संधीति अदक्खु, जे इमस्स विग्गहस्स अयं खणेत्ति अण्णेसी ।

२४. एस मग्गे आरिएहिं पवेइए ।

२५. उट्ठिए णो पमायए ।

२६. जाणित्तु दुक्खं पत्तेय सायं ।

२७ पुढो छंदा इह माणवा, पुढो दुक्खं पवेइयं ।

२८. से अविहिंसमाणे अणवयमाणे, पुट्ठो फासे विपणुण्णए ।

२९ एस समिया-परियाए वियाहिए ।

३०. जे असत्ता पावेहिं कम्मेहिं, उदाहु ते आयंका फुसंति ।

३१. इय उदाहु वीरे 'ते फासे पुट्ठो अहियासए' ।

३२. से पुव्वं पेयं पच्छापेयं ।

३३ भेउर-धम्मं, विद्धंसण-धम्मं, अधुवं, अणिइयं, असासयं, चयावचइयं, विपरिणाम-धम्मं, पासह एयं रूवसंधिं ।

३४. समुप्पेहमाणस्स इक्कायण-रयस्स इह विप्पमुक्कस्स, णत्थि मग्गे विरयस्स ।

—त्ति बेमि

द्वितीय उद्देशक

२२ कुछ लोग लोक मे अहिंसाजीवी है। वे इन [विषयो] मे [अनासक्तिवश] ही अहिंसाजीवी है।

२३ जो इस विग्रहमान वर्तमान क्षण का अन्वेषी है, वह इस [ससार से] उपरत होकर उन [विषयो] को झुलसाता हुआ, 'यह सधि है' ऐसा देखे।

२४. यह मार्ग आर्य पुरुषों द्वारा प्रवेदित है।

२५ उत्थित पुरुष प्रमाद न करे।

२६ प्रत्येक प्राणी के दुःख और सुख को जानकर [अप्रमत्त बने।]

२७ इस संसार में मनुष्य पृथक-पृथक इच्छा वाले, पृथक-पृथक दुःख वाले प्रवेदित हैं।

२८ वह [मुनि] हिंसा न करते हुए अनर्गल न बोलते हुए, स्पर्शों से स्पृष्ट होने पर सहन करे।

२९ यह समिति-पर्याय (श्रमण-धर्म) व्याख्यात है।

३० जो पापकर्मों मे असक्त हैं वे कदाचित् आतंक/परीषह का स्पर्श करते हैं।

३१ यह महावीर ने कहा है कि वे स्पर्शों से स्पृष्ट होने पर सहन करे।

३२ वह [आतंक] पहले भी था, पश्चात् भी रहेगा।

३३. तुम इस रूपसधि/शरीर के भगुर-धर्म, विध्वसन-धर्म, अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, उपचय-अपचय और विपरिणाम-धर्म को देखो।

३४ [शरीर-धर्म] सप्रेक्षक, एक आयतन [आत्मा] मे रत, विप्रमुक्त/अनासक्त विरत-पुरुष के लिए कोई मार्ग/उपदेश नही है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

३५. आवंती केयावती लोगंसि परिग्गहावती । से अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, एएसु चेव परिग्गहावती ।

३६. एयमेव एगेसिं महब्भयं भवइ ।

३७ लोगवित्तं च णं उवेहाए ।

३८ एए संगे अवियाणओ से सुपडिबद्धं सूवणीयं ति णच्चा, पुरिसा परमचक्खू विपरक्कमा ।

३९. एएसु चेव बंभचेरं ।

—त्ति बेमि ।

४० से सुयं च मे अज्झत्थियं च मे—बंध-पमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव ।

४१. एत्थ विरए अणगारे, दीहरायं तितिक्खए ।
पमत्ते बहिया पास, अप्पमत्तो परिव्वए ।

४२. एयं मोणं सम्मं अणुवासिज्जासि ।

तइओ उद्देसो

४३. आवंती केयावंती लोयंसि अपरिग्गहावंती, एएसु चेव अपरिग्गहावंती ।

४४. सोच्चा वई मेहावी, पंडियाण णिसामिया ।

३५ कुछ मनुष्य इस लोक मे परिग्रही हैं। वे अल्प या बहुत, अणु या स्थूल, सचित्त या अचित्त [वस्तु का परिग्रहण करते है।] वे इनमे ही परिग्रही है।

३६ यह [परिग्रह] कुछ लोगो के लिए महाभयकारक होता है।

३७ लोक-वृत्त की उपेक्षा करे।

३८ इस सग/वन्धन को न जानने से ही वह सुप्रतिवद्ध और सूपनीत/आसक्त है। यह जानकर परम चक्षुष्मान् पुरुष पराक्रम करे।

३९ इन [अपरिग्रही साधको] मे ही ब्रह्मचर्य होता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

४० मैंने सुना है, मैंने अध्ययन/अनुभव किया है — वन्ध और मोक्ष हमारी आत्मा मे ही है।

४१. यहाँ विरत अनगार आजीवन तितिक्षा करे। देख[1] प्रमत्त वाह्य है। अप्रमत्त होकर परिव्रजन कर।

४२. इस मौन (ज्ञान) मे सम्यग् वास कर।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तृतीय उद्देशक

४३. कुछ लोग इस लोक मे अपरिग्रही हैं। वे इन [वस्तुओ] मे ही अपरिग्रही हैं।

४४. मेधावी-पुरुष पण्डितो के वचन को सुनकर ग्रहण करे।

४५. समियाए धम्मे, आरिएहिं पवेइए ।

४६. जहेत्थ मए सधी झोसिए, एवमण्णत्थ सधी दुज्झोसिए भवइ, तम्हा बेमि—
णो णिहणेज्ज वीरियं ।

४७ जे पुव्वुट्ठाई, णो पच्छा-णिवाई ।
जे पुव्वुट्ठाई पच्छा-णिवाई ।
जे णो पुव्वुट्ठाई, णो पच्छा-णिवाई ।

४८ सेवि तारिसिए सिया, जे परिण्णाय लोगमण्णेसयति ।

४९ एय णियाय मुणिणा पवेइय—इह आणाकखी पडिए अणिहे, पुव्वावररायं जयमाणे, सया सील सपेहाए, सुणिया भवे अकामे अझझे ।

५०. इमेण चेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण वज्झओ ?

५१ जुद्धारिह खलु दुल्लह ।

५२. जहेत्थ कुसलेहिं परिण्णा-विवेगे भासिए ।

५३ चुए हु बाले गब्भाइसु रज्जइ ।

५४. अस्सि चेय पव्वुच्चइ, रूवसि वा छणसि वा ।

५५. से हु एगे संविद्धपहे मुणी, अण्णहा लोगमुवेहमाणे ।

५६ इय कम्म परिण्णाय, सव्वसो से ण हिसइ । संजमई णो पगब्भइ ।

४५. आर्य पुरुषो ने समता मे धर्म कहा है।

४६ जैसा यहाँ मैने सन्धि/परिग्रह/कर्म-सन्धि को झुलसाया है, इस प्रकार अन्यत्र सन्धि को झुलसाना दुष्कर होता है। इसलिए मै कहता हूँ, शक्ति का निगूहन/गोपन मत करो।

४७. जो/कोई पहले उठता है, पश्चात् पतित नही होता है। जो/कोई पहले उठता है, पश्चात् पतित होता है। जो/कोई न पहले उठता है, न पश्चात् पतित होता है।

४८. जो परित्याग करके लोक का आश्रय लेते है, वे वैसे ही [गृहवासी जैसे] हो जाते है।

४९. यह जानकर मुनि (भगवान) ने कहा — इस [अर्हत्-शासन] मे आज्ञा-कांक्षी अनासक्त पण्डित-पुरुष रात्रि के प्रथम एव अन्तिमयाम मे यतनाशील बने। सदाशील की सम्प्रेक्षा करे। [तत्त्व] सुनकर अकाम और अक्रुद्ध बने।

५०. इससे (स्वय से) ही युद्ध कर। बाह्य युद्ध से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?

५१ युद्ध के योग्य होना निश्चय ही दुर्लभ है।

५२ यथार्थत कुशल-पुरुष (भगवान) ने [युद्ध-प्रसग] मे परिज्ञा और विवेक का प्ररूपण किया है।

५३ पथ-च्युत हुए बाल/अज्ञानी-पुरुष गर्भ मे ही रहते है।

५४ इस [अर्हत्-शासन] मे कहा जाता है रूप या हिंसा मे [आसक्त पुरुष पथ-च्युत हो जाता है।]

५५ वह मुनि ही पथ पर आरूढ है, जो लोक को अन्यथा देखता है।

५६. इस प्रकार कर्म को जानकर वह सर्वश /सर्वथा हिंसा नही करता, सयम करता है, प्रगल्भता नही करता।

५७. उवेहमाणो पत्तेयं सायं वण्णाएसी णारभे कंचणं सव्वलोए ।

५८. एगप्पमुहे विदिसप्पइण्णे, णिव्विण्णचारी अरए पयासु ।

५९. से वसुमं सव्व-समण्णागय-पण्णाणेण अप्पाणेण अकरणिज्जं पावं कम्मं ।

६० तं णो अण्णेसिं ।

६१. जं सम्मति पासहा, तं मोणंति पासहा ।
जं मोणंति पासहा, तं सम्मति पासहा ।

६२. ण इमं सक्कं सिढिलेहिं अद्दिज्जमाणेहिं गुणासाएहिं वंकसमायारेहिं पमत्तेहिं गारमावसंतेहिं ।

६३. मुणी मोणं समायाए, धुणे कम्म-सरीरगं ।

६४. पंतं लूहं सेवंति, वीरा समत्तदंसिणो ।

६५. एस ओहंतरे मुणी, तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए ।

—त्ति बेमि ।

चउत्थो उद्देसो

६६. गामाणुगामं दूइज्जमाणस्स दुज्जायं दुप्परक्कंतं भवइ अवियत्तस्स भिक्खुणो ।

५७ प्रत्येक प्राणी की शाता को देखते हुए वर्णाभिलाषी होकर सर्वलोक मे किंचित भी हिंसा न करे।

५८ एक आत्मा की ओर अभिमुख रहे, विरोधी दिशाओ को पार करे, निर्विण्णचारी/विरक्त रहे, प्रजा मे अरत बने।

५९ उस सम्बुद्ध-पुरुष के लिए प्रज्ञा से पाप-कर्म अकरणीय है।

६० उसका अन्वेषण न करे।

६१ जो सम्यक्त्व देखता है, वह मौन/मुनित्व देखता है, जो मौन/मुनित्व देखता है, वह सम्यक्त्व देखता है।

६२ शिथिल, आर्द्र, गुणास्वादी/विषयासक्त, वक्रसमाचारी/मायावी, प्रमत्त, गृहवासी के लिए यह शक्य नही।

६३ मुनि मौन स्वीकार कर कर्म-शरीर को धुने।

६४ समत्वदर्शी वीर प्रान्त (नीरस) और लूखा/रूक्ष [भोजन] का सेवन करते है।

६५ इस [ससार-] प्रवाह को तरने वाला मुनि तीर्ण, मुक्त और विरत कहा कहा जाता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चतुर्थ उद्देशक

६६ अव्यक्त/अपरिपक्व भिक्षु ग्रामानुग्राम विहार करने मे दुर्यातना सहता है, दुष्पराक्रम करता है।

६७. वयसा वि एगे बुइया कुप्पंति माणवा ।

६८. उण्णयमाणे य णरे, महया मोहेण मुज्झइ ।

६९. संवाहा वहवे भुज्जो-भुज्जो दुरइक्कमा अजाणओ अपासओ ।

७०. एयं ते मा होउ ।

७१ एयं कुसलस्स दंसण ।

७२. तद्दिट्ठीए तम्मोत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सण्णी तण्णिवेसणे ।

७३. जयंविहारी चित्तणिवाई पंथणिज्झाई पलिवाहिरे ।

७४. पासिय पाणे गच्छेज्जा, से अभिक्कममाणे पडिक्कममाणे संकुचेमाणे पसारेमाणे विणियट्टमाणे संपलिमज्जमाणे ।

७५. एगया गुणसमियस्स रीयओ कायसफासं समणुचिण्णा एगइया पाणा उद्दायति ।

७६. इहलोग-वेयण-वेज्जावडियं ।

७७ जं आउट्टिकयं कम्म, तं परिण्णाय विवेगमेइ ।

७८. एवं से अप्पमाएण, विवेगं किट्टइ वेयवी ।

७९. से पभूयदंसी पभूयपरिण्णाणे उवसंते समिए सहिए सयाजए, दट्ठुं विप्पडिवेएइ अप्पाणं—

६७. किसी की व्यक्त वाणी से भी मनुष्य कुपित हो जाते है ।

६८ उन्नतमान होने पर मनुष्य महान् मोह से मूढ हो जाता है ।

६९ अज्ञान और अदर्शन के कारण पुन -पुन आने वाली बहुत-सी बाधाओ का अतिक्रमण करना दुष्कर है ।

७० तुम ऐसे मत बनो ।

७१. यह कुशल-पुरुष (महावीर) का दर्शन है ।

७२ उस (महावीर-दर्शन) मे दृष्टि कर, उसे प्रमुख मान, उसका ज्ञान कर उसी मे वास करे ।

७३ यतना/सयमपूर्वक विहार करने वाला मुनि चित्त लगाकर पथ पर ध्यान से चले ।

७४ वे आते हुए, लौटते हुए, सकुचित होते, फैलते हुए, ठहरे हुए, धूलि मे लिपटते हुए प्राणियो को देखकर चले ।

७५ कभी क्रिया करते हुए गुणसमित मुनि की देह का स्पर्श पाकर कुछ प्राणी उत्पीडित/मृत हो जाते हैं ।

७६. इससे लोक मे वेदन-वेद/वेदनीय कर्म का बन्ध होता है ।

७७. आकुट्टिकृत/प्रवृत्तिमूलक जो कर्म है, उन्हे जानकर विवेक/क्षय करो ।

७८ उस [कर्म] का अप्रमाद से विवेक/क्षय होता है, ऐसा वेदविद् [महावीर] ने कहा है ।

७९ वह विपुलदर्शी, विपुलज्ञानी, उपशान्त, समित/सत्प्रवृत्त, [रत्नत्रय-] सहित सदाजयीमुनि [स्त्रियो को] देखकर मन मे विचार करता है—

किमेस जणो करिस्सइ ? एस से परमारामो, जाओ लोगम्मि इत्थीओ ।

८०. मुणिणा हु एय पवेइयं ।

८१. उव्वाहिज्जमाणे गामधम्मेहिं अवि णिव्वलासए, अवि ओमोयरियं कुज्जा, अवि उड्ढं ठाणं ठाइज्जा, अवि गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अवि आहारं वोच्छिदेज्जा, अवि चए इत्थीसु मणं ।

८२. पुव्वं दंडा पच्छा फासा, पुव्वं फासा पच्छा दडा ।

८३. इच्चेए कलहासंगकरा भवति । पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणाए ।

—त्ति वेमि ।

८४. से णो काहिए णो पासणिए णो संपसारणिए णो ममाए णो कयकिरिए वइगुत्ते अज्झप्प-सवुडे परिवज्जए सया पावं ।

८५ एय मोणं समणुवासिज्जासि ।

—त्ति वेमि ।

पंचमो उद्देसो

८६. से वेमि—त जहा,
अवि हरए पडिपुण्णे, समंसि भोमे चिट्ठइ ।
उवसंतरए सारक्खमाणे, से चिट्ठइ सोयमज्झगए ।

यद्यपि इस लोक मे जो स्त्रियाँ हैं, वे परम सुख देने वाली है, किन्तु वे [स्त्री-] जन मेरा क्या करेगी ?

८०. मुनियो के लिए यह प्ररूपित है ।

८१. कभी ग्रामधर्म/वासना से उद्बाधित होने पर निर्बल भोजन भी करे, ऊनोदरि का भी करे (कम खाए), ऊर्ध्वस्थान पर भी स्थित होए, ग्रामानुग्राम विहार भी करे, आहार का विच्छेद भी करे, स्त्रियो मे मन का त्याग भी करे ।

८२ कभी पहले दड और पीछे स्पर्श होता है, तो कभी पहले स्पर्श और पीछे दण्ड होता है ।

८३ ये कलह और आसक्तिजनक होते है । इन [काम-भोग के परिणामो] को प्रतिलेख कर, जानकर [आचार्य] इनके अनासेवन की आज्ञा दे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

८४ वे न तो [कामभोगजन्य] कथा करे, न दृष्टि करे, न प्रसारण करे, न ममत्व करे, न क्रिया करे, वचन-गुप्ति/मौन करे, आत्म-सवरण करे, सदा पाप का परिवर्जन करे ।

८५ इस मौन/ज्ञान मे सम्यक् प्रकार से वास करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

पंचम उद्देशक

८६ मैं कहता हूँ जैसे कि कोई ह्रद प्रतिपूर्ण है, समभूमि मे स्थित है, उपशान्त, रज/पक रहित है, सुरक्षित है और स्रोत के मध्य मे स्थित है ।

८७. से पास सव्वओ गुत्ते, पास लोए महेसिणो,
जे य पण्णाणमता पवुद्धा आरंभोवरया।

८८. सम्ममेयति पासह।

८९. कालस्स कखाए परिव्वयति।

—त्ति बेमि।

९०. विइगच्छ-समावण्णेण अप्पाणेण णो लभइ समाहिं।

९१. सिया वेगे अणुगच्छति, असिया वेगे अणुगच्छंति,
अणुगच्छमाणेहिं अणणुगच्छमाणे कह ण णिव्विज्जे ?

९२. तमेव सच्चं णीसकं, जं जिणेहिं पवेइय।

९३. सड्ढिस्स णं समणुण्णस्स संपव्वयमाणस्स—समियति मण्णमाणस्स एगया समिया होइ,समियति मण्णमाणस्स एगया असमिया होइ, असमियति मण्णमाणस्स एगया समिया होइ, असमियति मण्णमाणस्स एगयाअसमिया होइ।

समियति मण्णमाणस्स समिया वा, असमिया वा, समिया होइ उवेहाए।
असमियंति मण्णमाणस्स समिया वा, असमिया वा, असमिया होइ उवेहाए।

९४. उवेहमाणो अणुवेहमाणं बूया—उवेहाहि समियाए।

९५. इच्चेवं तत्थ सधी झोसिओ भवइ।

९६ उट्ठियस्स ठियस्स गइं समणुपासह।

९७. एत्थवि बालभावे अप्पाण णो उवदसेज्जा।

८७. लोक में सर्वत्र [मन, वचन और शरीर से] गुप्त महर्षियो को देख, जो प्रज्ञावान्, प्रबुद्ध और आरम्भ/हिंसा से उपरत है।

८८ देखो, यह सम्यक् है।

८९ वे काल/मृत्यु की आकाक्षा करते हुए परिव्रजन करते है।

—ऐसा मै कहता हूँ।

९०. विचिकित्सा-समापन्न/शकाशील आत्मा समाधि प्राप्त नही कर सकती।

९१. कुछ पुरुष आश्रित होकर अनुगमन करते है, कुछ अनाश्रित होकर अनुगमन करते हैं। अनुगामियो के बीच अननुगामी को निर्वेद कैसे नही होगा ?

९२ वही सत्य नि शक है, जो जिनेश्वरो/तीर्थंकरो द्वारा प्ररूपित है।

९३ श्रद्धावान्, समनज्ञ और सप्रव्रज्यमान मुनि सम्यक् मानते हुए कभी सम्यक् होता है, सम्यक् मानते हुए कभी असम्यक् होता है, असम्यक् मानते हुए कभी सम्यक् होता है, असम्यक् मानते हुए कभी असम्यक् होता है। सम्यक् मानते हुए सम्यक् हो या असम्यक्, उत्प्रेक्षा से सम्यक् हो जाता है। असम्यक् मानते हुए सम्यक् हो या असम्यक् उत्प्रेक्षा से असम्यक् हो जाता है।

९४ उत्प्रेक्षमान (द्रष्टा/उदासीन) पुरुष अनुत्प्रेक्षमान पुरुष से कहे—सम्यक् (सत्य) की उत्प्रेक्षा/विचारणा करो।

९५ इस प्रकार [सम्यक्-असम्यक्/कर्म की] सन्धि/ग्रन्थि नष्ट होती है।

९६ उत्थित और स्थित पुरुष की गति को देखो।

९७. इस/हिंसामूलक बालभाव मे स्वय को उपदर्शित,स्थापित मत करो।

९८. तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वति मण्णसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव ज अज्जावेयव्वति मण्णसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव ज परियावेयव्वति मण्णसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव ज परिघेतव्वति मण्णसि ।
तुमंसि नाम सच्चेव ज उद्दवेयव्वति मण्णसि ।

९९. अंजू चेय-पडिबुद्ध-जीवी, तम्हा ण हंता ण विघायए ।

१००. अणुसवेयणमप्पाणेणं, ज हंतव्व णाभिपत्थए ।

१०१. जे आया से विण्णाया, जे विण्णाया से आया ।

१०२. जेण विजाणइ से आया ।

१०३. तं पडुच्च पडिसंखाए ।

१०४. एस आयावाई समियाए-परियाए वियाहिए ।

—त्ति बेमि ।

छट्ठो उद्देसो

१०५ अणाणाए एगे सोवट्ठाणा, आणाए एगे निरुवट्ठाणा । एय ते मा होउ । एय कुसलस्स दसण ।

१०६ तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सण्णी तण्णिवेसणे ।

९८ वह तू ही है, जिसे तू हतव्य मानता है।
वह तू ही है, जिसे तू आज्ञापयितव्य मानता है।
वह तू ही है, जिसे तू परितापयितव्य मानता है।
वह तू ही है, जिसे तू परिग्रहीतव्य मानता है।
वह तू ही है, जिसे तू अपद्रावयितव्य (मारने योग्य) मानता है।

९९ [मुनि] ऋजु और प्रतिबुद्धजीवी होता है, इसलिए न हनन करता है, न विघात।

१००. स्वय के द्वारा अनुसवेदित होने के कारण हनन की प्रार्थना/इच्छा न करे।

१०१. जो आत्मा है, वह विज्ञाता है। जो विज्ञाता है वह आत्मा है।

१०२ जिसके द्वारा जाना जाता है, वह आत्मा है।

१०३ इसकी प्रतीति से परिसख्यान/सही अनुमान होता है।

१०४ यह आत्मवादी सम्यक् पारगामी कहलाता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

षष्ठ उद्देशक

१०५ कुछ पुरुप अनाज्ञा मे उपस्थित होते हैं, कुछ व्यक्ति आज्ञा मे निरुपस्थित होते है। यह स्थिति तुम्हारी न हो। यह कुशल पुरुप [महावीर] का दर्शन है।

१०६ उसमे दृष्टि करे, उसमे तन्मय बने उसे प्रमुख वनाये, उसकी, स्मृति करे, उसमे वास करे।

१०७. अभिभूय अदक्खू, अणभिभूए पभू निरालंवणयाए ।

१०८. जे महं अवहिमणे ।

१०९. पवाएण पवाय जाणेज्जा, सहसम्मइयाए, परवागरणेण, अण्णेसिं वा अंतिए सोच्चा ।

११० णिद्देसं णाइवट्टेज्जा मेहावी, सुपडिलेहिया सव्वओ सव्वप्पणा सम्मं समभिण्णाय ।

१११. इहआरामो परिण्णाय, अल्लीण-गुत्तो परिव्वए ।

११२ णिट्ठियट्ठी वीरे, आगमेण सदा परक्कमेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

११३. उड्ढ सोया अहे सोया, तिरिय सोया वियाहिया ।
एए सोया विअक्खाया, जेहिं सगइ पासहा ।।

११४. आवट्ट तु पेहाए, एत्थ विरमेज्ज वेयवी ।

११५ विणएत्तु सोय णिक्खम्म, एस महं अकम्मा जाणइ, पासइ ।

११६ पडिलेहाए णावकंखइ, इह आगइं गइं परिण्णाय ।

११७. अच्चेइ जाइ-मरणस्स वट्टमग्गं वक्खाय-रए ।

११८ सव्वे सरा णियट्टंति, तक्का जत्थ ण विज्जइ, मई तत्थ ण गाहिया ।

१०७ अभिभूत ही अद्राक्षी/ज्ञाता है। अनभिभूत ही निरालम्ब होने मे समर्थ है।

१०८ जो महान् है, वही अवहिर्मन है।

१०९ पूर्व-जन्म की स्मृति से, सर्वज्ञ के वचनो से अथवा अन्य किसी ज्ञानी के पास सुनकर प्रवाद (ज्ञान) से प्रवाद (ज्ञान) को जानना चाहिये।

११० मेधावी सुप्रतिलेख/विचार कर सभी ओर से, सभी प्रकार से भली-भाँति जानकर निर्देश का अतिवर्तन न करे।

१११ इस परिज्ञात आराम (आत्म-ज्ञान) मे अलीन-गुप्त/जितेन्द्रिय होकर परिव्रजन करे।

११२ नियाग-अर्थी/मोक्षार्थी वीर-पुरुष आगम के अनुसार पराक्रम करे।
—ऐसा मैं कहता हूँ।

११३ ऊर्ध्व-स्रोत, अधो-स्रोत, तिर्यक-स्रोत प्रतिपादित हैं। ये स्रोत आख्यात हैं, जिनके द्वारा सगति/आसक्ति को देखो।

११४ वेदज्ञ/ज्ञाता-पुरुष आवर्त की प्रेक्षा करके विरत रहे।

११५ निष्क्रमित/ प्रव्रजित मुनि [कर्म/ससार-] स्रोत को रोके। ऐसा महान-पुरुष ही अकर्म को जानता है, देखता है।

११६ [मुनि] इस परिज्ञात गति-आगति का प्रतिलेख कर आकाक्षा नही करता।

११७ व्याख्यातरत/ज्ञानरत पुरुष जाति-मरण के वृत्त-मार्ग/चक्रमार्ग को पार कर लेता है।

११८. जहाँ सभी स्वर निर्वर्तित हैं, तर्क विद्यमान नही है, वहाँ बुद्धि का प्रवेश नही हो पाता है।

११६. ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयण्णे ।

१२०. से ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे, परिमंडले ।

१२१. ण किण्हे, ण णीले, ण लोहिए, ण हालिद्दे, ण सुक्किल्ले ।

१२२. ण सुरभिगंधे, ण दुरभिगंधे ।

१२३. ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाए, ण अंबिले, ण महुरे ।

१२४. ण कक्खडे, ण मउए, ण गरुए, ण सीए, ण उण्हे, ण णिद्धे ण लुक्खे ।

१२५ ण काऊ, ण रुहे, ण संगे ।

१२६. ण इत्थी, ण पुरिसे, ण अण्णहा ।

१२७. परिण्णे सण्णे ।

१२८. उवमा ण विज्जए अरूवी सत्ता ।

१२९. अपयस्स पयं णत्थि ।

१३० से ण सद्दे, ण रूवे, ण गंधे, ण रसे, ण फासे । इच्चेव ।

—त्ति बेमि ।

११९ अप्रतिष्ठान खेदज्ञ (लोकज्ञाता) के लिए ओज (ज्ञान-प्रकाश) है।

१२०. वह[ज्ञान-प्रकाश आत्मा]न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न वृत्त है, न त्र्यस्र/त्रिकोण है, न चतुरस्र/चतुष्कोण है, न परिमण्डल/गोलाकार है।

१२१. [वह] न कृष्ण है, न नील है, न लोहित है, न पीत है, न शुक्ल है।

१२२. [वह] न सुगन्धित है, दुर्गन्धित।

१२३ [वह] न तिक्त है, न कटुक है, न कषाय/कसैला है, न अम्ल है, न मधुर है।

१२४ [वह] न कर्कश है, न मृदु है, न गुरु है, न लघु है, न शीत है, न उष्ण है, न स्निग्ध है, न लूखा/रूक्ष है।

१२५ [वह] न काय है, न रूह/पुनर्जन्मा है, न सग है।

१२६ [वह] न स्त्री है, न पुरुष है, न अन्य/नपुंसक है।

१२७ वह परिज्ञ है, सज्ञ है।

१२८ [वह] उपमा-रहित अरूपी सत्ता है।

१२९ उस अपदस्थ का पद नहीं है।

१३० वह न शब्द है, न रूप है, न गंध है, न रस है, न स्पर्श है। इतना ही।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

छट्ठ अज्झयणं

धुयं

षष्ठ अध्ययन

धुत

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'धुत/धूत' है। यह अध्याय कर्म-क्षरण का अभियान है। जीवन की उत्पत्ति से लेकर महामुनित्व की प्रतिष्ठा का सारा वृतान्त इसमे आकलित है। चेतना की जागरूकता ही आरोग्य-लाभ है। कार्मिक परिवेश के साथ चेतना की साझेदारी मैत्री विपर्यास है। आत्मा एकाकी है, अत और तो क्या कर्म भी उसके लिए पडोसी है, घरेलू नहीं। परकीय पदार्थों से स्वय को अतिरिक्त देखने का नाम ही भेद-विज्ञान है।

कर्मों की खेती कषाय और विषय-वासना के बदौलत होती है। राग और द्वेष कर्म के बीज हैं। कर्म जन्म-मरण का हलधर है। जन्म-मरण से ही दुख की तिक्त तुम्बी फलती है। और, दुख ससार की वास्तविकता है। मुनि-जीवन वीतरागता का अनुष्ठान है। इसलिए यह ससार से दूरी है।

मनुष्य का मन सदा ससरणशील रहता है। अत मन की मृत्यु का नाम ही मुनित्व की पहचान है। मन प्रचण्ड ऊर्जा का स्वामी है। यदि इसके व्यक्तित्व का सम्यग्बोध कर इसे सृजनात्मक कार्यों मे लगा दिया जाए, तो वह आत्मदर्शन/परमात्म-साक्षात्कार मे अनन्य सहायक हो सकता है।

जीवन मे मुनित्व एव गार्हस्थ्य दोनों का अकुरण सम्भव है। मन की कसौटी पर गृहस्थ भी मुनि हो सकता है और मुनि भी गृहस्थ। तन-मन की सत्ता पर आत्म-आधिपत्य प्राप्त करना स्वराज्य की उपलब्धि है। कर्म-शत्रुओं को फँफेडने के लिए अहर्निश सन्नद्ध रहना आत्मशास्ता का दायित्व है।

सत्य की मुखरता आत्मा की पवित्रता से है। मन के मौन हो जाने पर ही निशब्द सत्य, निर्विकल्प समाधि झकृत होती है। अत बाह्याभ्यन्तर की स्वच्छता वास्तव मे कैवल्य का आलिंगन है। स्वय को जगाकर महामुनित्व का महोत्सव आयोजित करना स्वय मे सिद्धत्व की प्राण-प्रतिष्ठा है।

इस प्रस्तावित स्थिति मे प्रवेश करने के लिए आवश्यक है कि साधक को सदा उसे खोजना चाहिये, जो ससार-सरिता के सतत वहाव के वीच मे भी स्थिर है। ससार तो नदी-नाव का सयोग है। अत निस्सग-साधक के लिए सग उसी का उपादेय है, जिसे मृत्यु न चूम सके। ससार से महाभिनिष्क्रमण/महातिक्रमण करने वाला सिद्धों की ज्योति विकसित कर सकता है।

अभिनिष्क्रमण वैराग्य की अभिव्यक्ति है। वैराग्य राग का विलोम नहीं, अपितु राग से मुक्ति है। वैराग्य-पथ पर कदम वर्धमान होने के बाद ससार का आकर्षण दमित राग का प्रकटन है। यदि ससार के राग-पाषाणों पर वैराग्य की सतत जल धार गिरती रहे तो कठोर से कठोर चट्टान को भी चकनाचूर किया जा सकता है।

वान्त ससार साधक का अतीत है और अतीत का स्मरण मन का उपद्रव है। अपने अस्तित्व मे निवास करना ही आस्तिकता है। साधक ज्यों-ज्यों सूर्य बन तपेगा, त्यों-त्यों मुक्ति की पखुरियों के द्वार उद्घाटित होते चले जाएँगे।

साधक का जीवन सघर्ष, अहिंसा एव सत्यविजय की एक अभिनव यात्रा है। वह शत्रुजयी एव मृत्युजयी है। सिद्धाचल के शिखरों पर आरोहण करते समय चूकने/फिसलने का खतरा सदा साथ रहता है। पथ-च्युति चुनौती है, किन्तु प्रत्येक फिसलन एक शिक्षण है। अप्रमत्तता तथा जागरूकता पथ की चौकसी है। प्रज्ञा-सप्रेक्षक और आत्म-जागृत पुरुष हर फिसलन के पार है। सयम-यात्रा को कष्टपूर्ण जानकर पथ-तट पर बैठ जाना सकल्प-शैथिल्य है। जागरूकतापूर्वक साधना-मार्ग पर बढते रहना तपश्चर्या है। साधक के लिए सिद्धि ही सर्वोपरि कृत्य है। जीवन-ऊर्जा को समग्रता के साथ साधना मे एकाग्र करने वाले के लिए कदम-कदम पर मजिल है।

पढमो उद्देसो

१. ओवुज्झमाणे इह माणवेसु, आघाइ से णरे ।

२. जस्स इमाओ जाइओ सव्वओ सुपडिलेहियाओ भवति, अक्खाइ से णाणमणेलिस ।

३. से किट्टइ तेसिं समुट्ठियाणं णिक्खित्तदण्डाणं समाहियाण पण्णाणमताणं इह मुत्तिमग्गं ।

४. एव एगे महावीरा विप्परक्कमति ।

५. पासह एगे अवसीयमाणे अणत्तपण्णे ।

६. से वेमि—से जहा वि कुमे हरए विणिविट्ठचित्ते, पच्छन्न-पलासे, उम्मग्ग से णो लहइ ।

७. भञ्जगा इव सन्निवेसं णो चयंति ।

८. एव एगे—अणेगरूवेहिं कुलेहिं जाया, रूवेहिं सत्ता कलुणं थणंति, णियाणओ ते ण लभति मोक्खं ।

९. अह पास तेहिं-तेहिं कुलेहि आयत्ताए जाया ।

१०. गंडी अहवा कोढी, रायसी अवमारियं ।
काणियं झिमिय चेव, कुणिय खुज्जिय तहा ॥

प्रथम उद्देशक

१ इस ससार मे वही नर है, जो मनुष्योके बीच बोधिपूर्वक आख्यान करता है।

२. जिसे वे जातियाँ सभी प्रकार से सुप्रतेलेखित हैं, वह अनुपम ज्ञान का आख्यान करता है।

३. समुपस्थित, निक्षिप्तदण्ड, ममाधियुक्त, प्रज्ञावन्त पुरुष के लिए ही इस ससार मे मुक्ति-मार्ग प्रकीर्तित है।

४ इस प्रकार कुछ महावीर-पुरुप विशेष पराक्रम करते हैं।

५. अवसाद करते हुए कुछ अनात्मप्रज्ञ पुरुष को देखो।

६ वही कहता हूँ — जैसे कि पलाश से प्रच्छन्न ह्रद मे कोई विनिविष्ट/एकाग्रचित्त कछुआ उन्मार्ग को प्राप्त नही करता है।

७. कुछ पुरुष वृक्ष के समान नियत स्थान को नही छोडते।

८- इस प्रकार कुछ पुरुष अनेक प्रकार के कुलो मे उत्पन्न होते है, रूपो/विपयो मे आसक्त होते है, करुण स्तनित/विलाप करते हैं, निदान के कारण वे मोक्ष को प्राप्त नही करते।

९ अरे देख! उन-उन कुलो/रूपो मे तू बार-बार उत्पन्न हुआ है।

१० गण्डी—कण्ठरोगी, कोढी, राजसी/राजरो—दमा, अपस्मार—मृगी, काणा, सून्नता—लकवा, कूणित्व—हस्त-पगुता, कुब्जता—कुबडापन,

उदरिं च पास मूय च, सूणिअं च गिलासिणि ।
वेवइं पीढसप्पि च, सिलिवयं महुमेहणि ॥
सोलस एए रोगा, अक्खाया अणुपुव्वसो ।
अह णं फुसंति आयका, फासा य असमजसा ॥
मरणं तेसि सपेहाए, उववाय चयण च णच्चा ।
परिपागं च सपेहाए, तं सुणेह जहा-तहा ॥

११. संति पाणा अंधा तमसि वियाहिया ।

१२. तामेव सइं असइं अइअच्च उच्चावयफासे पडिसवेएइ ।

१३. बुद्धेहिं एय पवेइयं ।

१४. संति पाणा वासगा, रसगा, उदए उदयचरा, आगासगामिणो ।

१५ पाणा पाणे किलेसंति ।

१६. पास लोए महब्भयं ।

१७. बहुदुक्खा हु जतवो ।

१८. सत्ता कामेसु माणवा ।

१९. अवलेण वहं गच्छति, सरीरेण पभंगुरेण ।

२०. अट्टे से बहुदुक्खे, इइ वाले कुव्वइ ।

२१. एए रोगे बहू णच्चा, आउरा परियावए, णाल पास, अलं तवेएहिं ।

२२ एय पास मुणी ! महब्भय ।

उदरी-रोग—शूल-रोग, मूकता—गूँगापन, मूजन, भस्मकरोग, कम्पनत्व, पीठसर्पी—पीठ का झुकाव, श्लीपद—हाथीपगा और मधुमेह। ये सोलह रोग अनुपूर्व से आख्यात है। इसके अतिरिक्त आतक, स्पर्श और असमजसता का स्पर्श करते है। उनके मरण की सम्प्रेक्षा कर उपपात और च्यवन को जानकर तथा परिपाक/कर्मफल को देखकर उसे यथार्थ रूप में सुने।

११. प्राणी अन्धकार मे होने से अन्धे कहे गये हैं।

१२. वहाँ पर एक वार या अनेक वार जाकर उच्च आताप-स्पर्श का प्रतिसवेदन करता है।

१३. यह वुद्ध-पुरुषो द्वारा प्रवेदित है।

१४ प्राणी वर्षज, रसज, उदक/जलज, उदकचर आकाशगामी हैं।

१५. प्राणी प्राणियो को क्लेश/कष्ट देते हैं।

१६. लोक के महाभय को देख।

१७ जन्तु वहुदुःखी हैं।

१८. मनुष्य काम मे आसक्त हैं।

१९ अवल भगुर शरीर के लिए वध करते हैं।

२० जो आर्त है, वह वाल/अज्ञानी वहुत दुःख करता है।

२१ रोग वहुत है, ऐसा जानकर आतुर मनुष्य परिताप देते हैं। देखो! समर्थ ही नहीं है। इनसे तुम्हारे लिए कोई प्रयोजन है।

२२. मुने! इस महाभय को देख।

२३. णाइवाएज्ज कचणं ।

२४ आयाण भो ! सुस्सूस भो ! धूयवायं पवेयइस्सामि ।

२५. इह खलु अत्तत्ताए तेहिं-तेहिं कुलेहिं अभिसेएण अभिसेएण अभिसंभूया, अभिसजाया, अभिणिव्वुडा, अभिसवुड्ढा, अभिसंबुद्धा, अभिणिक्खंता, अणुपुव्वेण महामुणी ।

२६ तं परक्कमंत परिदेवमाणा, मा णे चयाहि इय ते वयंति ।
छंदोवणीया अज्झोववण्ण, अक्कंदकारी जणगा रुवंति ।।

२७. अतारिसे मुणी, णो ओहं तरए, जणगा जेण विप्पजढा ।

२८ सरण तत्थ णो समेति, कहं णु णाम से तत्थ रमइ ?

२९ एयं णाणं सया समणुवासिज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

३० आउर लोयमायाए, चइत्ता पुव्वसंजोग हिच्चा उवसमं वसित्ता बंभचेरंसि वसु वा अणुवसु वा जाणित्तु धम्मं अहा-तहा, अहेगे तमचाइ कुसीला ।

३१ वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं विउसिज्जा ।

२३ किंचित् भी अतिपात न करे।

२४ हे शिष्य ! समझो, सुनो। मैं धुतवाद प्रवेदित करूँगा।

२५ इस ससार मे आत्मभाव से उन-उन कुलो मे अभिसिंचन करने से अभिसभूत हुए, अभिसजात हुए, अभिनिविष्ट हुए, अभिसवृद्ध हुए, अभिसम्बुद्ध हुए, अभिनिष्क्रान्त हुए और अनुपूर्वक महामुनि हुए।

२६ उस पराक्रमी पुरुष को विलाप करते हुए जनक कहते है कि तू हमे मत छोड। वे छन्दोपनीक/सम्मानकर्ता, अभ्युपपन्न/प्रेमासक्त आक्रन्दकारी जनक रोते हैं।

२७ [जनक कहते है—] वह न तो मुनि है, न ओघ/प्रवाह को पार कर सकता है, जो जनक को छोड देता है।

२८ मुनि उस [ससार] की शरण मे नही जाता। फिर वह कैसे ससार मे रमण कर सकता है ?

२९ इस ज्ञान मे सदा वास कर।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

३० आतुर लोक को जानकर, पूर्व सयोग को त्याग कर, उपशम को धारण कर, ब्रह्मचर्य मे वास कर, यथातथ्य धर्म को पूर्ण या अपूर्ण रूप मे जानकर भी कुशील-पुरुष [चारित्र-धर्म का] पालन नही कर पाते।

३१. वे वस्त्र, प्रतिग्रह/उपकरण, कम्बल, पाद-प्रोञ्छन का विसर्जन कर बैठते हैं।

३२. अणुपुव्वेण अणहियासेमाणा परीसहे दुरहियासए ।

३३. कामे ममायमाणस्स इयाणिं वा मुहुत्ते वा अपरिमाणाए भेए ।

३४. एवं से अंतराएहिं कामेहिं आकेवलिएहिं अवितिण्णा चेए ।

३५. अहेगे धम्ममायाय आयाणप्पभिइं सुपणिहिए चरे, अप्पलीयमाणे दढे ।

३६ सव्वं गिद्धिं परिण्णाय, एस पणए महामुणी ।

३७. अइअच्च सव्वओ संग 'ण महं अत्थित्ति इय एगोहं ।'

३८. अंसिं जयमाणे एत्थ विरए अणगारे सव्वओ मुंडे रीयते ।

३९. जे अचेले परिवुसिए संचिक्खइ ओमोयरियाए, से अक्कुट्ठे व हए व लूसिए वा पलियं पकत्थ अदुवा पकत्थ अतहेहिं सद्द-फासेहिं, इय संखाए, एगयरे अण्णयरे अभिण्णाय, तितिक्खमाणे परिव्वए ।

४०. जे य हिरी, जे य अहिरीमाणा ।

४१. चिच्चा सव्वं विसोत्तियं, फासे-फासे समियदंसणे ।

४२. एए भो ! णगिणा वुत्ता, जे लोगंसि अणागमणधम्मिणो ।

४३. आणाए मामगं धम्मं ।

३२, क्रमश दु सह परीषहों को सहन न करते हुए [वे चारित्र छोड देते हैं ।]

३३ काम मे ममत्ववान होते हुए इसी क्षण या मूहूर्त भर मे अथवा अपरिमित समय मे भेद/मृत्यु प्राप्त कर लेते है ।

३४ इस प्रकार वे अन्तराय, काम/विषय और अपूर्णता के कारण पार नही होते ।

३५ कुछ लोग धर्म को ग्रहण करके जीवन-पर्यन्त सुनिगृहीत और दृढ अप्रलीन/अनासक्त होकर विचरण करते है।

३६. यह महामुनि सर्व गृद्धता को छोडकर प्रणत है ।

३७. सभी प्रकार से संग का त्यागकर सोचे—मेरा कोई नही है, मै अकेला हूँ ।

३८ इस (धर्म) मे यत्नशील, विरत, अनगार सर्व प्रकार से मुण्ड होकर विचरण करता है ।

३९. जो अचेलक, पर्युषित/संयमित और अवमौदर्यपूर्वक सप्रतिष्ठित है, वह अतथ्य/अनर्गल शब्द-स्पर्शो से आकृष्ट, हत, लुंचित, पलित अथवा प्रकथ्य/निन्द्य होने पर विचार कर अनुकूल और प्रतिकूल को जानकर तितिक्षापूर्वक परिव्रजन करे ।

४० जो हितकर है या अहितकर है [उस पर विचार करे ।]

४१ सर्व विस्रोतो को छोडकर सम्यग्दर्शनपूर्वक स्पर्श/जाल को स्पर्शित करे-काटे ।

४२. हे शिष्य ! जो लोक मे अनागमधर्मी (पुनरागमनरहित) हैं, वे नग्न/निर्ग्रन्थ कहे गये है ।

४३. मेरा धर्म आज्ञा मे है ।

४४. एस उत्तरवादे इह माणवाणं वियाहिए ।

४५. एत्थोवरए तं झोसमाणे आयाणिज्जं परिण्णाय, परियाएण विगिंचइ ।

४६. इह एगेसिं एगचरिया होइ ।

४७. तत्थियरा इयरेहिं कुलेहिं सुद्धेसणाए सव्वेसणाए से मेहावी परिव्वए ।

४८. सुब्भि अदुवा दुब्भि अदुवा तत्थ भेरवा पाणा पाणे किलेसंति ।

४९. ते फासे पुट्ठो धीरो अहियासेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

५०. एयं खु मुणी आयाणं सया सुअक्खायधम्मे विधूयकप्पे णिज्झोसइत्ता जे अचेले परिवुसिए तस्स णं भिक्खुस्स णो एवं भवइ—परिजुण्णे मे वत्थे वत्थं जाइस्सामि, सुत्तं जाइस्सामि, सूइं जाइस्सामि, संधिस्सामि, सीविस्सामि, उक्कसिस्सामि, वोक्कसिस्सामि, परिहिस्सामि, पाउणिस्सामि ।

५१. अदुवा तत्थ परक्कमंतं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति, सीयफासा फुसंति, तेउफासा फुसंति, दंसमसगफासा फुसंति ।

५२. एगयरे अण्णयरे विरूवरूवे फासे अहियासेइ अचेले लाघवं आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ ।

४४, यह उत्तरवाद/श्रेष्ठ कथन मनुष्यो के लिए व्याख्यायित है।

४५ इसमे लीन पुरुष उस कर्म-बन्ध को नष्ट करता हुआ परिज्ञात आदानीय/ग्राह्य पर्याय से उसका त्याग करता है।

४६ इनमे से किसी की एकचर्या होती है।

४७. इमसे इतर मुनि इतर कुलो से शुद्धैपरणा और सर्वेपरणा के द्वारा परिव्रजन करते है, वे मेधावी हैं।

४८ सुरभित या दुरभित अथवा भैरव प्राणी प्राणो को क्लेश देते हैं।

४९ वे धीर-पुरुष [मुनि] उन स्पर्शों से स्पृष्ट होने पर सहन करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तृतीय उद्देशक

५० सम्यक् प्रकार से आख्यात धर्म-रत विधूत-कल्पी मुनि इस आदान (उपकरण) को त्याग करके जो अचेलक रहता है, उस भिक्षु के लिए ऐसा नही होता है— मेरा वस्त्र परिजीर्ण है, इसलिए वस्त्र की याचना करूँगा, सूत्र/धागे की याचना करूँगा, सूई की याचना करूँगा, साँधूगा, सीऊगा, बढाऊँगा, छोटा बनाऊँगा, पहनूंगा, ओढूंगा।

५१ अथवा उसमे पराक्रम करते हुए अचेलक तृण स्पर्श स्पर्श/पीडित करते है, शीत-स्पर्श स्पर्श करते है, तेज-स्पर्श स्पर्श करते है, दशमशक-स्पर्श स्पर्श करते है।

५२ अचेलक लघुता को प्राप्त करता हुआ एक रूप, अनेक रूपएव विविध रूपो के स्पर्शो को सहन करता है। वह तप मे अभिसमन्वित होता है।

५३. जहेयं भगवया पवेइय तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिज्जा ।

५४. एव तेसिं महावीराण चिररायं पुव्वाइ वासाणि रीयमाणाण दवियाणं पास अहियासिय ।

५५. आगयपण्णाणाण किसा बाहवो भवति पयणुए य मंससोणिए ।

५६. विस्सेणिं कट्टु परिण्णाए एस तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए ।

—त्ति बेमि ।

५७. विरय भिक्खु रीयत, चिरराओसियं, अरई तत्थ किं विधारए ?

५८. सधेमाणे समुट्ठिए ।

५९. जहा से दीवे असंदीणे, एव से धम्मे आरिय-पएसिए ।

६०. ते अणवकंखमाणा पाणे अणइवाएमाणा दइया मेहाविणो पंडिया ।

६१. एव तेसिं भगवओ अणुट्ठाणे जहा से दिया-पोए, एवं ते सिस्सा दिया य राओ य अणुपुव्वेण वाइय ।

—त्ति बेमि

५३ जैसा भगवत्-प्रवेदित है, उसे जानकर सभी प्रकार से, सभी रूप से सम्यक्त्व/समत्व को ही समझे।

५४ इस प्रकार पूर्व वर्षों मे चिर काल तक विचरण करने वाले उन सयमित महावीरो की सहनशीलता देख।

५५ प्रज्ञापन्न की वाहुएँ कृश होती है और मास-रक्त प्रतनिक/अल्प होता है।

५६ परिज्ञात विश्रेणी (राग-द्वेषादि वन्धन) को काटकर यह मुनि तीर्ण, मुक्त एव विरत कहलाता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

५७. चिरकाल से सयम मे विचरण करने वाले विरत भिक्षु को क्या अरति विचलित कर पायेगी ?

५८ सधिमान/अध्यवसायी समुपस्थित/जागृत है।

५९ जैसे द्वीप असदीन/अनावृत है, इसी प्रकार वह आर्य-प्रवेदित धर्म है।

६०. वे अनाकाक्षी एव अनतिपाती/अहिंसक मुनि प्राणियो के प्रति दयाशील, मेधावी और पडित है।

६१ इस प्रकार वे शिष्य भगवान् के अनुष्ठान मे दिन-रात क्रमश तल्लीन है, जिस प्रकार द्विज-पोत/विहग-शिशु।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

चउत्थो उद्देसो

६२. एव ते सिस्सा दिया य राओ य, अणुपुव्वेण वाइया तेहिं महावीरेहिं पण्णाणमतेहिं तेसिंतिए पण्णाणमुवलब्भ हिच्चा उवसम फारुसिय समाइयति ।

६३. वसित्ता बभचेरंसि आण तं णो त्ति मण्णमाणा ।

६४. अग्घाय तु सोच्चा णिसम्म समणुण्णा जीविस्सामो एगे णिक्खम्मंते ।

६५. असभवंता विडज्झमाणा, कामेहि गिद्धा अज्झोववण्णा ।
समाहिमाघायमजोसयन्ता, सत्थारमेव फरुस वदंति ।।

६६. सीलमता उवसता, सखाए रीयमाणा, असीला अणुवयमाणा विइया मंदस्स वालया ।

६७ णियट्टमाणा एगे आयार-गोयरमाइक्खति ।

६८. णाणभट्ठा दसणलूसिणो णममाणा एगे जीवियं विप्परिणामेति ।

६९. पुट्ठा वेगे णियट्टति, जीवियस्सेव कारणा ।

७०. णिक्खंत पि तेसिं दुण्णिक्खत भवइ ।

७१. वाल-वयणिज्जा हु ते णरा, पुणो-पुणो जाइं पकप्पेंति ।

७२ अहे सभवंता विद्दायमाणा, अहमसी विउक्कसे ।

चतुर्थ उद्देशक

६२ इस प्रकार उन प्रज्ञापन्न महावीरो के द्वारा रात-दिन क्रमश शिक्षित हुए कितने ही शिष्य उनके पास प्रज्ञान/विज्ञान को प्राप्त करके भी उपशम को छोडकर परुषता का समादर करते हैं।

६३ ब्रह्मचर्य मे वास करके भी उनकी आज्ञा को नही मानते।

६४. आख्यात को सुनकर, समझकर, समादर कर जीवन-यापन करेंगे, ऐसा सोचकर कुछ निष्क्रमण करते हैं।

६५. काम मे विदग्ध और आसक्ति-उपपन्न लोग निष्क्रमण-मार्ग पर असभवित होते हैं, आख्यात समाधि को प्राप्त न करते हुए शास्ता को ही कठोर कहते हैं।

६६ वे शीलवान् उपशान्त और बोधिपूर्वक विचरण करने वाले मुनियो को अशील कहते है। अज्ञानी की यह दोहरी मूर्खता है।

६७ कुछ निवर्तमान मुनि आचार-गोचर (शुद्धाचरण) का कथन करते हैं।

६८ कुछ मुनि नत होते हुए भी ज्ञान-भ्रष्ट और दर्शन-भ्रष्ट होने के कारण जीवन का विपरिणमन करते है।

६९. जीवन के कारण से स्पृष्ट होने पर कुछ लोग निवर्तित होते हैं।

७० निष्क्रान्त होते हुए भी वे दुर्निष्क्रान्त है।

७१. वे मनुष्य बाल-वचनीय हैं। वे बार-बार जाति/जन्म को प्रकल्पित/प्राप्त करते हैं।

७२ निम्न होते हुए भी स्वय को विद्वान मानने वाले अपने अह को प्रदर्शित करते है।

७३. उदासीगे फरसं वयंति ।

७४. पलिय पकथे अदुवा पकथे अतहेहिं ।

७५. त मेहावी जाणिज्जा धम्मं ।

७६ अहम्मट्ठी तुमसि णाम वाले, आरंभट्ठी, अणुवयमाणे, हणमाणे, घायमाणे, हणओ यावि समणुजाण माणे ।

७७ धीरे धम्मे ।

७८. उदीरिए, उवेहइ ण अणाणाए, एस विसण्णे वियद्दे वियाहिए ।

—त्ति बेमि ।

७९ 'किमणेण भो ! जणेण करिस्सामि' त्ति मण्णमाणे एव एगे वइत्ता,
मायर पियर हिच्चा, णायओ य परिग्गहं ।
वीरायमाणा समुट्ठाए, अविहिंसा सुव्वया दता ॥

८० परस्स दीणे उप्पइए पडिवयमाणे ।

८१ वसट्टा कायरा जणा लूसगा भवंति ।

८२ अहमेगेसिं सिलोए पावए भवइ ।

८३ से समणो विब्भंते, विब्भंते पासह ।

८४. एगे समण्णागएहिं असमण्णागए, णममाणेहिं अणममाणे, विरएहिं अविरए, दविएहिं अदविए ।

८५. अभिसमेच्चा पडिए मेहावी णिट्ठियट्ठे वीरे आगमेण सया परक्कमेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

७३ उदासीन-साधक को परुष वचन बोलते हैं।

७४. पलित/कृत कार्य का कथन करते है अथवा अतथ्य का कथन करते है।

७५ मेधावी उस धर्म को जाने।

७६ तू अधर्मार्थी है, बाल है, आरम्भार्थी है, अनुमोदक है, हिंसक है, घातक है, हनन करने वाले का समर्थक है।

७७ धर्म दुष्कर है।

७८ जो प्रतिपादित धर्म की अनाज्ञा से उपेक्षा करता है। वह विषण्ण और वितर्क व्याख्यात है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

७९, 'अरे! इस स्वजन का मै क्या करूँगा—इस प्रकार मानते और कहते हुए कुछ लोग माता, पिता, ज्ञातिजन और परिग्रह को छोडकर वीरतापूर्वक समुपस्थित होते हैं, अहिंसक, सुव्रती और दान्त होते हैं।

८०. दीन, उत्पतित और पतित लोगो को देख।

८१. विषय-वशवर्ती कायर-जन लूमक/विध्वसक है।

८२. इनमे से कुछ श्लाघ्य और पातक हैं।

८३ उस विभ्रान्त और विभ्रष्ट श्रमण को देखो।

८४ कुछ मुनि समन्वागत या असमन्वागत, नम्रीभूत या अनम्रीभूत, विरत या अविरत, द्रवित या अद्रवित हैं।

८५ यह जानकर पण्डित, मेधावी, निश्चयार्थी वीर-पुरुष सदा आगम के अनुसार पराक्रम करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

पंचमो उद्देसो

८६. से गिहेसु वा गिहंतरेसु वा, गामेसु वा गामतरेसु वा, नगरेसु वा नगरंतरेसु वा, जणवएसु वा जणवयतरेसु वा, गामनयरंतरे वा गामजणवयतरे वा, नगरजणवयतरे वा, सतेगइया जणा लूसगा भवति, अदुवा फासा फुसंति ।

८७. ते फासे, पुट्ठो वीरोहियासए ।

८८. ओए समियदंसणे ।

८९. दय लोगस्स जाणित्ता पाईण पडीण दाहिणं उदीणं, आइक्खे विभए किट्टे वेयवी ।

९०. से उट्ठिएसु वा अणुट्ठिएसु वा सुस्सूसमाणेसु पवेयए—संति, विरइं उवसम, णिव्वाण, सोयविय, अज्जविय, मद्दवियं, लाघविय, अणइवत्तियं ।

९१. सव्वेसिं पाणाण सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खेज्जा ।

९२. अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खमाणे—णो अत्ताण आसाएज्जा, णो परं आसाएज्जा, णो अण्णाइ पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं आसाएज्जा ।

९३ से अणासायए अणासायमाणे वज्झमाणाणं पाणाण भूयाण जीवाण सत्ताणं, जहा से दीवे असदीणे, एव से भवइ सरण महामुणी ।

९४. एव से उट्ठिए ठियप्पा, अणिहे अचले चले, अवहिल्लेसे परिव्वए ।

पंचम उद्देशक

८६. वह [मुनि] गृहो मे या गृहान्तरो (गृह के समीप) मे ग्रामो मे या ग्रामान्तरो मे, नगरो मे या नगरान्तरो मे, जनपदो मे या जनपदान्तरो मे, ग्राम-नगरान्तरो (गाँव-नगर के बीच) मे या ग्राम-जनपदान्तरो मे या नगर-जनपदान्तरो मे रहते है, तब कुछ लोग त्रास पहुँचाते हैं अथवा वे स्पर्शो को स्पर्श करते हैं।

८७. उन स्पर्शो से स्पृष्ट होने पर वीर-पुरुष अध्यास/सहन करे।

८८ साधक का ओज सम्यग् दर्शन हैं।

८९. वेद/लोक की दया जानकर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण एव उत्तर दिशा मे आख्यान करे, कीर्तित करे।

९० वह सुश्रुपा के लिए उपस्थित या अनुपस्थित होने पर शान्ति, विरति/उपशम, निर्वाण, शौच, आर्जव, मार्दव लाघव का अनुशासन कहे।

९१. भिक्षु सव प्राणियो, सब भूतो, सव सत्वो और सव जीवो को धर्म का उपदेश दे।

९२ विवेकी भिक्षु धर्म का आख्यान करता हुआ न तो अपनी आशातना करे, न दूसरे की आशातना करे और न ही अन्य प्राणियो, भूतों, जीवो एव सत्वो की आशातना करे।

९३ वह आशातना-रहित/जागत होता हुआ आशातना न करे। वध्यमान प्राणियो, भूतो, जीवो एव सत्वो के लिए जैसे असदीन दीप है, इसी प्रकार वह महामुनि शरणभूत है।

९४. इस प्रकार वह स्थितात्म/स्थितप्रज्ञ उत्थित होकर अस्नेह, अचल, चल एव वाह्य से असमीपस्थ होकर परिव्रजन करे।

९५. संक्खाय पेसलं धम्म, दिट्ठिम परिणिव्वुडे ।

९६. तम्हा संगति पासह ।

९७. गंथेहिं गढिया णरा, विसण्णा कामक्कंता ।

९८. तम्हा लूहाओ णो परिवित्तसेज्जा ।

९९. जस्सिमे आरंभा सव्वओ सव्वत्ताए सुपरिण्णाया भवंति, जेसिमे लूसिणो णो परिवित्तसति, से वंता कोहं च माणं च मायं च लोहं च, एस तुट्टे वियाहिए ।

—त्ति बेमि ।

१००. कायस्स वियाघाए, एस संगामसीसे वियाहिए ।

१०१. से हु पारंगमे मुणी, अविहम्ममाणे फलगावयट्ठि, कालोवणीए कंखेज्ज कालं, जाव सरीरभेउ ।

—त्ति बेमि ।

९५ द्रष्टा-पुरुष विशुद्ध धर्म को जानकर परिनिवृत्त बने ।

९६ आमवित को देखो ।

९७. ग्रन्थियो मे गृद्ध एव विषण्ण/खिन्न नर कामाक्रान्त है ।

९८ अत रूक्षता से वित्रस्त न हो ।

९९. जिसे आरम्भ/हिंसा सभी प्रकार से सुपरिज्ञात है, जो रूक्षता से परिवित्रस्त नही है, वह क्रोध, मान, माया और लोभ का वमन कर बन्धन को तोडे ।

—ऐसा मै कहता हूँ ।

१००. शरीर का व्याघात (कायोत्सर्ग) अन्तरसग्राम मे मुख्य हैं ।

१०१. वही पारगामी मुनि है, जो अविहन्यमान एव काष्ठफलकवत् अचल है । वह मृत्यु पर्यन्त शरीर-भेद होने तक मृत्यु की आकाक्षा करे ।

—ऐसा मै कहता हूँ ।

सप्तम अध्याय 'महापरिज्ञा' है। महा-परिज्ञा विशिष्ट प्रज्ञा की परिक्रमा का परिचायक है। यह अध्ययन व्यवछिन्न हो गया है। अत न उसकी प्रस्तुति की जा सकती है, न कोई परिचर्चा। हम अविराम प्रवेश कर रहे हैं अष्टम अध्याय मे।

अट्ठं अज्झयणं
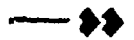
विमोक्खो

अष्टम् अध्ययन

विमोक्ष

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'विमोक्ष' है। विमोक्ष साधना का समग्र निचोड है। इसका लक्ष्य साधना का प्रस्थान-केन्द्र है और इसकी प्राप्ति उसका विश्राम-केन्द्र।

विमोक्ष मृत्यु नहीं, मृत्यु-विजय का महोत्सव है। आत्मा की नग्नता/निर्वस्त्रता, कर्ममुक्तता का नाम ही विमोक्ष है। विमोक्ष की साधना अन्तरात्मा मे विशुद्धता/स्वतन्त्रता का आध्यात्मिक अनुष्ठान है।

विमोक्ष ससार से छुटकारा है। ससार की गाडी राग और द्वेष के दो पहियों के सहारे चलती है। इस गाडी से नीचे उतरने का नाम ही विमोक्ष है। विमोक्ष गन्तव्य है। वह वहीं, तभी है, जहाँ/जब व्यक्ति ससार की गाडी से स्वय को अलग करता है।

विमोक्ष निष्प्राणता नहीं, मात्र ससार का निरोध है। ससार मे गति तो है, किन्तु प्रगति नहीं। युग युगान्तर के अतीत हो जाने पर भी उसकी यात्रा कोल्हु के बैल की ज्यों बनी रहती है। भिक्षु/साधक वह है, जिसका ससार की यात्रा से मन फट चुका है, विमोक्ष मे ही जिसका चित्त टिक चुका है। सन्यास ससार से अभि-निष्क्रमण है और विमोक्ष के राजमार्ग पर आगमन है।

ससार साधक का अतीत है और विमोक्ष भविष्य। उसके वर्धमान होते कदम उसका वर्तमान है। वर्तमान की नींव पर ही भविष्य का महल टिकाऊ होता है। यदि नींव मे ही गिरावट की सम्भावनाएँ होंगी, तो महल अपना अस्तित्व कैसे रख पायेगा? विमोक्ष साधनात्मक जीवन-महल का स्वर्णिम कगूरा/शिखर है। अत वर्तमान का सम्यक् अनुद्रष्टा एव विशुद्ध उपभोक्ता ही भविष्य की उज्ज्वलताओं को आत्मसात् कर सकता है। प्रगति को ध्यान मे रखकर वर्तमान मे की जाने वाली गति उजले भविष्य की प्रभावापन्न पहचान है।

विमोक्ष जीवन की ग्राखिरी मजिल है। जीवन के हर कदम पर मृत्यु की पदचाप सुनना लक्ष्य के प्रति होने वाली सुस्ती को जड से उखाड फेकना है। साधक को ग्रात्म-सदन की रखवाली के लिए जगी ग्रांख चौकन्ना रहना चाहिये। ग्रन्तर्गृह को सजाने-सँवारने के लिए किया जाने वाला श्रम ग्रपने मोक्षनिष्ठ-व्यक्तित्व को ग्रमृत स्नान कराना है। जीवन की विदाई से पहले ग्रन्तर्यात्रा मे ग्रपनी निखिलता को एकटक लगाए रखना स्वय के प्रति वफादारी है।

साधना का सत्य वीतराग-विज्ञान है। राग ससार से जुडना है ग्रौर विराग उससे टूटना। वीतराग स्वय की शोध-यात्रा है। ग्रपने ग्रापको पूर्णता देना ही वीतराग का परिणाम है। साधक तो मुक्ति-ग्रभियान का ग्रभियन्ता है। इसीलिए वह ग्रन्थियों से निर्ग्रन्थ है। ग्रन्थि कथरी है जिसमे चेतना दुबकी बैठी रहती है। ग्रन्थियों को बनाए/बचाए रखना ही परिग्रह है। प्रस्तुत ग्रध्याय साधनात्मक जीवन के लिए ग्रपरिग्रह की जोरदार पहल करता है।

विमोक्ष-यात्रा मे परिग्रह एक बोझ है। परिग्रह चाहे बाहर का हो या भीतर का, निर्ग्रन्थ के लिए तो वह 'सूर्य-ग्रहण' जैसा है। इसलिए 'ग्रहण' को प्रभावहीन करने के लिए ग्रपरिग्रह की जीवन्तता ग्रपरिहार्य है। पात्र, वेश, स्थान ग्रथवा बाह्य जगत् को विमोक्ष की दृष्टि मे देखने वाला ही ग्रात्म-साक्षात्कार की प्राथमिकता को छू सकता है।

साधक के लिए वस्त्र, पात्र तो क्या, शरीर भी ग्रपने-ग्राप मे एक परिग्रह है। मृत्यु तो जन्मसिद्ध ग्रधिकार है। जीवन की सान्ध्य-वेला मे मृत्यू की ग्राहट तो सुनाई देगी ही। मृत्यु किसी प्रकार की छीना-झपटी करे, उससे पहले ही साधक काल-करों मे देह-कथरी को खुशी-खुशी सौंप दे। स्वय को ले जाए सिद्धों की बस्ती मे, समाधि की छाँह मे, जहाँ महकती है जीवन की शाश्वतताएँ। खिसक जाना पडता है वहाँ से मृत्यु के तमस् को, ग्रमरत्व के ग्रमृत प्रकाश से पराजित होकर।

पढमो उद्देसो

१. से बेमि—समणुण्णस्स वा असमणुण्णस्स वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा णो पाएज्जा, णो णिमंतेज्जा, णो कुज्जा वेयावडियं—परं आढायमाणे ।

—त्ति बेमि ।

२ धुवं चेयं जाणेज्जा ।

३. असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा लभिया णो लभिया, भुंजिया णो भुंजिया, पंथं विउत्ता विउक्कम्म विभत्तं धम्मं झोसेमाणे समेमाणे पलेमाणे, पाएज्ज वा णिमंतेज्ज वा, कुज्जा वेयावडियं परं अणाढायमाणे ।

—त्ति बेमि ।

४. इहमेगेसिं आयार-गोयरे णो सुणिसंते भवइ, ते इह आरंभट्ठी अणुवयमाणा हणमाणा, घायमाणा, हणओ यावि समणुजाणमाणा ।

५. अदुआ अदिण्णमाइयंति ।

६. अदुवा वायाओ विउज्जंति, तं जहा—
अत्थि लोए, णत्थि लोए, धुवे लोए, अधुवे लोए, साइए लोए, अणाइए लोए, सपज्जवसिए लोए, अपज्जवसिए लोए, सुकडेत्ति वा दुक्कडेत्ति वा, कल्लाणेत्ति वा पावेत्ति वा, साहुत्ति वा असाहुत्ति वा, सिद्धीत्ति वा, असिद्धीत्ति वा, णिरएत्ति वा, अणिरएत्ति वा ।

प्रथम उद्देशक

१ मैं वही कहता हूँ—साधक समनुज्ञ या असमनुज्ञ को अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह/पात्र या पादप्रोंछन न दे, न निमन्त्रित करे, न अत्यत आदरपूर्वक वैयावृत्य करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

२ यह ध्रुव है, ऐसा समझो।

३ अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादपोंछन प्राप्त हो या न हो, भोजन किया हो या न किया हो, मार्ग को छोडकर या लाँघकर भिन्न धर्म का पालन करते हुए, आते हुए या जाते हुए वह दे, निमत्रित करे और वैयावृत्य करे, तो भी उसे अत्यन्त आदर न दे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

४ इस संसार मे कुछ साधको को आचार-गोचर ज्ञात नही है। वे आरम्भार्थी, आरम्भ-समर्थक, हिंसक, घातक अथवा हनन करने वालो का अनुमोदन करते है।

५ अथवा वे अदत्तादान करते हैं।

६ अथवा वे वादो का प्रतिपादन करते हैं। जैसे कि—
लोक है, लोक नही है, लोक ध्रुव है, लोक अध्रुव है, लोक सादि है, लोक अनादि है, लोक सपर्यवसित है, लोक अपर्यवसित है, लोक सुकृत है या दुष्कृत है; कल्याण है या पाप है, साधु है या असाधु है, सिद्धि है या असिद्धि है, नरक है या नरक नही है।

७. जमिणं विप्पडिवण्णा मामगंधम्मं पण्णवेमाणा ।

८. एत्थवि जाणह अकम्हा ।

९. एवं तेसिं णो सुअक्खाए, णो सुपण्णत्ते धम्मे भवइ ।

१०. से जहेयं भगवया पवेइयं आसुपण्णेण जाणया पासया ।

११. अदुवा गुत्ती वओगोयरस्स ।

—त्ति बेमि ।

१२ सव्वत्थ सम्मयं पावं ।

१३. तमेव उवाइकम्म ।

१४. एस मह विवेगे वियाहिए ।

१५. गामे वा अदुवा रण्णे ? णेव गामे णेव रण्णे ।

१६. धम्ममायाणह—पवेइयं माहणेण मइमया ।

१७ जामा तिण्णि उयाहिया, जेसु इमे आरिया संबुज्झमाणा समुट्ठिया ।

१८. जे णिव्वुया पावेहिं कम्मेहिं, अणियाणा ते वियाहिया ।

१९. उड्ढं अहं तिरियं दिसासु, सव्वओ सव्वावंति च णं पडियक्कं जीवेहिं कम्म-समारंभेणं ।

७. जो इस प्रकार से विप्रतिपन्न/विवाद करते है, वे अपने धर्म का निरूपण करते हैं।

८. इसे अकारक समझें।

९. उनका धर्म न सुआख्यात होता है और न सुनिरूपित।

१०. जैसा कि ज्ञाता-द्रष्टा आशुप्रज्ञ भगवान् महावीर के द्वारा प्रतिपादित है।

११. वचन के विषय का गोपन करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

१२ लोक सर्वत्र पाप-सम्मत है।

१३ उसका अतिक्रमण करे।

१४ यह महान् विवेक व्याख्यात है।

१५ विवेक गाँव मे होता है या अरण्य मे? वह न गाँव मे होता है, न अरण्य में।

१६. मतिमान् महावीर द्वारा धर्म को समझो।

१७ तीन साधन कहे गये है, जिनमें ये आर्य पुरुष सम्बुद्ध होते हुए समुपस्थित होते हैं।

१८ जो पाप कर्मों से निवृत्त हैं, वे अनिदान कहलाते है।

१९ ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशाओ विदिशाओ मे सब प्रकार से प्रत्येक जीव के प्रति कर्म-समारम्भ किया जाता है।

श्रुत

२०. तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं एएहिं काएहिं दंडं समारंभेज्जा, णेवण्णेहिं एएहिं काएहिं दंड समारंभावेज्जा, णेवण्णे एएहिं काएहिं दंड समारंभंते वि समणुजाणेज्जा ।

२१. जेवण्णे एएहिं काएहिं दंड समारंभंति, तेसिं पि वयं लज्जामो ।

२२. तं परिण्णाय मेहावी तं वा दंडं, अण्णं वा दंडं, णो दंडभी दंडं समारंभेज्जासि ।

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

२३ से भिक्खू परक्कमेज्ज वा, चिट्ठेज्ज वा, णिसीएज्ज वा, तुयट्टेज्ज वा, सुसाणंसि वा, सुण्णगारंसि वा, गिरिगुहंसि वा, रुक्खमूलंसि वा, कुंभाराययणंसि वा, हुरत्था वा कहिं चि विहरमाणं तं भिक्खुं उवसंकमित्तु गाहावई बूया—आउसंतो समणा ! अहं खलु तव अट्ठाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएमि, आवसहं वा समुस्सिणोमि, से भुंजह वसह आउसंतो समणा !

२४ भिक्खू तं गाहावइं समणसं सवयसं पडियाइक्खे—आउसंतो गाहावई ! णो खलु ते वयणं आढामि, णो खलु ते वयणं परिजाणामि, जो तुमं मम अट्ठाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएसि, आवसहं वा समुस्सिणासि, से विरओ आउसो गाहावई ! एयस्स अकरणयाए ।

२० मेधावी उसे जानकर जीव-कायो के प्रति न स्वय दण्ड का प्रयोग करे, न दूसरो से इन जीव-कायो के लिए दण्ड प्रयोग करवाए और न जीव-कायो के लिए दण्ड प्रयोग करने वालो का अनुमोदन करे।

२१ जो इन जीव-कायो के प्रति दण्ड समारम्भ करते है, उनके प्रति भी हम लज्जित/करुणाशील है।

२२ मेधावी उसे जानकर दण्ड देने वाले के प्रति उस दण्ड का या अन्य दण्ड का प्रयोग न करे।

—ऐसा मै कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

२३ वह भिक्षु श्मशान, शून्यागार, गिरि-गुफा, वृक्ष-मूल या कुम्हार-आयतन मे पराक्रम करता हो, स्थित हो, बैठा हो या सोया हो, वहाँ कही पर विचरण करते समय उस भिक्षु के समीप आकर गाथापति/गृहपति कहता है— आयुष्मान् श्रमण ! मै प्राणियो, भूतो जीवो और सत्त्वो का समारम्भ कर आपके समुद्देश्य से अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह/पात्र, कम्बल या पादप्रोञ्छन क्रय कर, उधार लेकर छीन कर आज्ञाहीन होकर आपके समीप लाता हूँ, आवास-गृह बनवाता हूँ। हे आयुष्मान् श्रमण ! उसको भोगें और रहें।

२४ भिक्षु उस समनस्वी गाथापति को कहे — आयुष्मान् गाथापति ! वास्तव मे तुम्हारे वचनो को जानता हूँ, जो तुम प्राणियो, भूतो, जीवो और सत्त्वों का समारम्भ कर मेरे समुद्देश्य से अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह, कम्बल या पाद-प्रोञ्छन क्रय कर, उधार लेकर, छीनकर, आज्ञाहीन होकर मेरे समीप लाते हो, आवास-गृह बनवाते हो। हे आयुष्मान् गाथापति ! यह अकरणीय है। इसलिए मै इनसे विरत हूँ।

२५. से भिक्खू परक्कमेज्ज वा, चिट्ठेज्ज वा, णिसीएज्ज वा, तुयट्टेज्ज वा, सुसाणसि वा, सुण्णागारसि वा, गिरिगुहसि वा, रुक्खमूलसि वा, कुंभारायतणसि वा, हुरत्था वा, कहिंचि विहरमाणं तं भिक्खु उवसकमित्तु गाहावई आयगयाए पेहाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएइ, आवसहं वा समुस्सिणाइ, तं भिक्खु परिघासेउं।

२६. तं च भिक्खू जाणेज्जा—सहसम्मइयाए, परवागरणेणं, अण्णेसिं वा अंतिए सोच्चा अयं खलु गाहावई मम अट्ठाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारंभ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएइ, आवसहं वा समुस्सिणाइ, तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणाए।

—त्ति बेमि।

२७ भिक्खुं च खलु पुट्ठा वा अपुट्ठा वा जे इमे आहच्च गंथा वा फुसंति। से हंता! हणह, खणह, छिंदह, दहह, पयह, आलुंपह, विलुंपह, सहसाकारेह, विप्परामुसह। ते फासे धीरो पुट्ठो अहियासए अदुवा आयार-गोयरमाइक्खे तक्किया णमणेलिसं। अणुपुव्वेण सम्मं पडिलेहाए आयगुत्ते अदुवा गुत्ती वओगोयरस्स।

२८ बुद्धेहिं एयं पवेइयं—
से समणुण्णे असमणुण्णस्स असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा नो पाएज्जा, नो निमंतेज्जा, नो कुज्जा वेयावडियं परं आढायमाणे।

—त्ति बेमि।

२९. धम्ममायाणह, पवेइयं माहणेण मइमया।

२५. वह भिक्षु श्मशान, शून्यागार, गिरि-गुफा, वृक्ष-मूल या कुम्हार-आयतन मे पराक्रम करता हो, स्थित हो, बैठा हो या सोया हो, वहाँ कही विचरण करते समय उस भिक्षु के समीप आकर गाथापति आत्मगत प्रेक्षा से प्राणियो, भूतो जीवो और सत्त्वो का समारम्भ कर उद्देश्यपूर्वक अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह, कम्बल या पादप्रोछन क्रय कर, उधार लेकर, छीनकर, आज्ञाहीन होकर देना चाहता है, आवास-गृह बनवाना जाहता है। यह सब वह भिक्षु के निमित्त करता है।

२६ अपनी सम्मति से, अन्य वार्तालाप से या अन्य से सुनकर उस भिक्षु को ज्ञात हो जाता है कि यह गाथापति मेरे लिए प्राणियो, भूतो, जीवो और सत्त्वो का समारम्भ कर उद्देश्यपूर्वक अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह, कम्बल या पानप्रोछन क्रय कर, उधार लेकर, छीनकर आज्ञाहीन होकर देना चाहता है, आवास-गृह बनवाता है। उसका प्रतिलेख कर भिक्षु आगम एव आज्ञा के अनुसार सेवन न करे।

—ऐसा मै कहता हूँ।

२७ ग्रन्थियो से स्पृष्ट या अस्पृष्ट होने पर भिक्षु को पकडकर पीडित करते हैं। वे कहते है मारो, हनो, कूटो, छेदो, जलाओ, पकाओ, लूंटो, छीनो काटो, यातना दो। स्पर्शो/कष्टो से स्पृष्ट होने पर धीर-साधक सहन करे। अथवा अन्य रीति से तर्कपूर्वक आचार-गोचर को समझाए। अथवा आत्मगुप्त होकर क्रमश. समभाव का प्रतिलेख कर वचन-गोचर का गोपन करे—मौन रहे।

२८. बुद्ध-पुरुषो के द्वारा ऐसा प्रवेदित है—
समनुज्ञ-पुरुष असमनुज्ञ-पुरुष को अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह, कम्बल या पादप्रोछन प्रदान न करे, निमन्त्रित न करे, विशेष आदर-पूर्वक वैयावृत्य न करे।

—ऐसा मै कहता हूँ।

२९ मतिमान माहण,ज्ञानी द्वारा प्रवेदित धर्म को समझो।

३०. समणुण्णे सनणुण्णस्स असण वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबल वा पायपुंछणं वा पाएज्जा, णिमतेज्जा कुज्जा वेयावडियं पर आढायमाणे ।

—त्ति बेमि ।

३१. मज्झिमेणं वयसा वि एगे, सबुज्झमाणा समुट्ठिया ।

३२. सोच्चा मेहावी वयण पडियाणं णिसामिया ।

३३. समियाए धम्मे, आरिएहिं पवेइए ।

३४. ते अणवकखमाणा अणाइवाएमाणा अपरिग्गहमाणा णो परिग्गहावंती सव्वावती च ण लोगसि ।

३५. णिहाय दड पाणेहिं, पाव कम्म अकुव्वमाणे, एस मह अगथे वियाहिए ।

३६. ओए जुइमस्स खेयण्णे उववाय चवण च णच्चा ।

३७. आहारोवचया देहा, परिसह-पभगुरा ।

३८. पासह एगे सव्विदिएहिं परिगिलायमाणेहिं ।

३९. ओए दयं दयइ ।

४० जे सन्निहाण-सत्थस्स खेयण्णे से भिक्खू कालण्णे वलण्णे मायण्णे खणण्णे विणयण्णे समयण्णे ।

४१ परिग्गहं अममायमाणे कालेणुट्ठाई अपडिण्णे ।

४२ दुहओ छेत्ता नियाई ।

३०. समनुज्ञ-पुरुष समनुज्ञ-पुरुष को अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह, कम्बल या पादप्रोंछन प्रदान करे, निमन्त्रित करे, विशेष आदरपूर्वक वैयावृत्य करे ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

३१ कुछ पुरुष मध्यम वय मे उपस्थित होकर भी सम्बुध्यमान होते हैं ।

३२. मेधावी-पुरुष पण्डितो के नि.श्रित वचनो को सुनकर [प्रव्रजित होते हैं ।]

३३. आर्य-पुरुषो द्वारा प्रवेदित है कि समता मे धर्म है ।

३४ वे अनाकाक्षी, अनतिपाती, अपरिग्रही पुरुष समस्त लोक मे परिग्रही नही हैं ।

३५. प्राणियो के दण्ड/हिंसा को छोडकर पाप-कर्म न करने वाला यह मुनि महान् अग्रन्थ कहलाता है ।

३६ उत्पाद और च्यवन को जानकर द्युतिमान-पुरुष के लिए खेदज्ञता और ओज है ।

३७ शरीर आहार से उपचित होता है और परिषह से प्रभगुर ।

३८. देखो ! कुछ लोग सर्वेन्द्रियो से परिग्लायमान होते हैं ।

३९. ओज दया देता है ।

४०. जो सन्निधान-शस्त्र का खेदज्ञ/ज्ञाता है, वह भिक्षु कालज्ञ, बलज्ञ, मात्रज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ एव समयज्ञ है ।

४१ परिग्रह के प्रति ममत्व न करने वाला समय का अनुष्ठाता एवं अप्रतिज्ञ है ।

४२ दोनो—राग और द्वेष को छेदकर विचरण करे ।

४३. तं भिक्खुं सीयफास-परिवेवमाण-गायं उवसंकमित्ता गाहावई बूया—
'आउसंतो समणा ! णो खलु ते गामधम्मा उव्वाहंति ?'

'आउसंतो गाहावई ! णो खलु मम गामधम्मा उव्वाहंति । सीयफासं णो खलु अहं सचाएमि अहियासित्तए । णो खलु मे कप्पइ अगणिकाय उज्जालेत्तए वा पज्जालेत्तए वा, काय आयावेत्तए वा अण्णेसिं वा वयणाओ ।'

४४. सिया से एव वदतस्स परो अगणिकाय उज्जालेत्ता पज्जालेत्ता कायं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा, त च भिक्खू पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणाए ।

—त्ति बेमि

चउत्थो उद्देसो

४५. जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पाय-चउत्थेहिं, तस्स णं णो एव भवइ—चउत्थ वत्थ जाइस्सामि ।

४६. से अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाएज्जा अहापरिग्गहियाइ वत्थाइ धारेज्जा । णो धोएज्जा, णो रएज्जा, णो धोय-रत्ताइ वत्थाइ धारेज्जा । अपलिओवमाणे गामतरेसु, ओमचेलिए, एय खु वत्थधारिस्स सामग्गिय ।

४७, अह पुण एवं जाणेज्जा—उवाइक्कते खलु हेमंते, गिम्हे पडिवण्णे, अहापरिजुण्णाइं वत्थाइं परिट्ठवेज्जा । अदुवा संतरुत्तरे, अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले ।

४८. लाघविय आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

४३ शीतस्पर्श से प्रकम्पित शरीर वाले उस भिक्षु के समीप जाकर गाथापति बोले—आयुष्मान् श्रमण ! क्या तुम्हे ग्राम्य-धर्म (विषय-वासना) बाधित नही करते ?

आयुष्मान् गाथापति ! मुझे ग्राम्य-धर्म बाधित नही करते । मै शीतस्पर्श को सहन करने मे समर्थ नही हूँ । अग्निकाय को उज्ज्वलित या प्रज्वलित करना अथवा दूसरो के शरीर से अपने शरीर को आतापित या प्रतापित करना मेरे लिए कल्पित/उचित नही है ।

४४ इस प्रकार भिक्षु के कहने पर भी वह गाथापति अग्नि-काय को उज्ज्वलित या प्रज्वलित कर शरीर को आतापित या प्रतापित करे तो भिक्षु आगम एव आज्ञा के अनुसार प्रतिलेख कर सेवन न करे ।

—ऐसा मै कहता हूँ ।

चतुर्थ उद्देशक

४५ जो भिक्षु तीन वस्त्र और चौथे पात्र की मर्यादा रखता है, उसके लिए ऐसा भाव नही होता—चौथे वस्त्र की याचना करूँगा ।

४६ वह यथा-एषणीय/ग्राह्य वस्त्रो की याचना करे । यथा परिगृहीत वस्त्रो को धारण करे । न धोए, न रगे और न धोए-रगे वस्त्रो को धारण करे । ग्रामान्तर होते समय उन्हे न छिपाए, कम धारण करे, यही वस्त्रधारी की सामग्री/उपकरण है ।

४७ भिक्षु यह जाने कि हेमंत बीत गया है, ग्रीष्म आ गया है, तो यथा-परिजीर्ण वस्त्रो का परिष्ठापन/विसर्जन करे या एक कम उत्तरीय रखे या एक-शाटक रहे अथवा अचेल/वस्त्ररहित हो जाए ।

४८ लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है ।

४९ जमेयं भगवया पवेइयं, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया।

५०. जस्स णं भिक्खुस्स एव भवइ—पुट्ठो खलु अहमंसि, णालमहमसि सीयफास अहियासित्तए, से वसुम सव्व-समण्णागय-पण्णाणेणं अप्पाणेण केइ अकरण-याए आउट्टे ।

५१. तवस्सिणो हु तं सेय, जमेगे विहमाइए। तत्थावि तस्स कालपरियाए से वि तत्थ वि अतिकारए।

५२. इच्चेय विमोहायतण हिय, सुहं, खम, णिस्सेयस, आणुगामिय।

—त्ति बेमि।

पंचमो उद्देसो

५३. जे भिक्खू दोहि वत्थेहिं परिवुसिए पायतइएहिं, तस्सणं णो एव भवइ—तइय वत्थ जाइस्सामि।

५४. से अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाएज्जा अहापरिग्गहियाइ वत्थाइ धारेज्जा। णो धोएज्जा, णो रएज्जा, णो धोय-रत्ताइ वत्थाइ धारेज्जा। अपलिओवमाणे गामंतरेसु, ओमचेलिए, एयं खु तस्स भिक्खुस्स सामग्गिय।

५५, अह पुण एवं जाणेज्जा—उवाइक्कंते खलु हेमंते, गिम्हे पडिवण्णे, अहापरि-जुण्णाइं वत्थाइं परिट्ठवेज्जा। अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले।

५६. लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ।

४६ भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप मे जानकर सब प्रकार से सम्पूर्ण रूप से समत्व का ही पालन करे ।

५० जिस भिक्षु को ऐसा प्रतीत हो — मैं स्पृष्ट हूँ । शीत स्पर्श सहन करने मे समर्थ नही हूँ । वह वसुमान/सयमी अपनी सर्व समन्वागत प्रज्ञा से आवर्त मे सलग्न न हो ।

५१. तपस्वी के लिए अवशान/समाधि मरण ही श्रेयस्कर है । काल-मृत्यु प्राप्त होने पर वह भी [कर्म] अन्त करने वाला हो जाता है ।

५२ यही विमोह का आयतन है, हितकर, सुखकर, क्षेमकर, नि श्रेयस्कर और आनुगामिक है ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

पंचम उद्देशक

५३ जो भिक्षु दो वस्त्र और तीसरे पात्र की मर्यादा रखता है, उसके लिए ऐसा भाव नही होता—तीसरे वस्त्र की याचना करूँगा ।

५४. वह यथा-एपणीय वस्त्रो की याचना करे । यथा परिगृहीत वस्त्रो को धारण करे । न धोए, न रगे और न धोए-रगे हुए वस्त्रो को धारण करे । ग्रामान्तर होते समय उन्हे न छिपाए, कम धारण करे, यही वस्त्रधारी की सामग्री है ।

५५ भिक्षु यह जाने कि हेमंत बीत गया है, ग्रीष्म आ गया है, तो यथा-परिजीर्ण वस्त्रो का परिष्ठापन/विसर्जन करे या एक कम उत्तरीय रखे या एक-शाटक रहे अथवा अचेल/वस्त्ररहित हो जाए ।

५६ लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है ।

५७. जमेय भगवया पवेदितं, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ।

५८. जस्स ण भिक्खुस्स एवं भवइ—'पुट्ठो अबलो अहमंसि, नालमहमंसि गिहंतर-संकमणं भिक्खायरिय-गमणाए' । से एवं वदतस्स परो अभिहडं असणं वा पाणं वा खाइम वा साइम वा आहट्टु दलएज्जा, से पुव्वामेव आलोएज्जा 'आउसंतो गाहावई ! णो खलु मे कप्पइ अभिहडे असणे वा पाणे वा खाइमे वा साइमे वा भोत्तए वा, पायए वा, अण्णे वा एयप्पगारे ।'

५९. जस्स णं भिक्खुस्स अय पगप्पे—अह च खलु पडिण्णत्तो अपडिण्णत्तेहिं, गिलाणो अगिलाणेहिं, अभिकख साहम्मिएहिं कीरमाणं वेयावडियं साइज्जिस्सामि ।

६० अहं वा वि खलु अपडिण्णत्तो पडिण्णत्तस्स, अगिलाणो गिलाणस्स, अभिकंख साहम्मिअस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए ।

६१. आहट्टु पइण्णं आणक्खेस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि,
आहट्टु पइण्णं आणक्खेस्सामि, आहडं च णो साइज्जिस्सामि,
आहट्टु पइण्णं आणक्खेस्सामि, आहड च साइज्जिस्सामि,
आहट्टु पइण्ण आणक्खेस्सामि, आहड च णो साइज्जिस्सामि ।

६२. लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

६३. जमेय भगवया पवेदिय, तमेव अभिसमेच्चा सव्वतो सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ।

६४. एवं से अहाकिट्टियमेव धम्म समहिजाणमाणे सते विरए सुसमाहियलेसे ।

६५. नत्थावि तस्स कालपरियाए से तत्थ वि अंतिकारए ।

५७ भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप मे जानकर मव प्रकार से, सम्पूर्ण रूप से समत्व का ही पालन करे।

५८. जिस भिक्षु को ऐसा प्रतीत हो — मैं स्पृष्ट हूँ, अवल हूँ। मैं भिक्षाचर्या-गमन के लिए गृहान्तर-सक्रमण मे असमर्थ हूँ। ऐसा कहने वाले के लिए कोई गृहस्थ अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य सम्मुख लाकर दे तो वह पूर्व आलोडन कर कहे हे आयुष्मान् गृहपति ! सम्मुख लाया हुआ, अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य या अन्य किसी आहार को खाना-पीना मेरे लिए कल्पित/ग्राह्य नही है।

५६ जिस भिक्षु का यह प्रकल्प/प्रतिज्ञा है — मैं अप्रतिज्ञप्त से प्रतिज्ञप्त हूँ, अग्लान से ग्लान हूँ, सार्धमिक की अभिकाक्षा करता हुआ वैयावृत्य स्वीकार करूँगा।

६० मैं भी प्रतिज्ञप्त की अप्रतिज्ञप्त से, ग्लान की अग्लान मे सार्धमिक की, अभिकाक्षा करता हुआ वैयावृत्य करने के लिए प्रयत्न करूँगा।

६१ प्रतिज्ञा लेकर आहार लाऊँगा और लाया हुआ स्वीकार करूँगा।
प्रतिज्ञा लेकर आहार लाऊँगा, किन्तु लाया हुआ स्वीकार नही करूँगा।
प्रतिज्ञा लेकर आहार नही लाऊँगा, किन्तु लाया हुआ स्वीकार करूँगा।
प्रतिज्ञा लेकर आहार नही लाऊँगा और लाया हुआ स्वीकार नही करूँगा।

६२ लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

६३ भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप मे जानकर सब प्रकार से, सब रूप से समत्व का ही पालन करे।

६४ इस प्रकार वह यथा-कीर्तित धर्म को सम्यक् प्रकार से जानता हुआ शान्त, विरत एव सुसमाहित लेश्यवाला बने।

६५ काल/मृत्यु प्राप्त होने पर वह भी कर्मान्तिकारक हो जाता है।

६६. इच्चेय विमोहायतणं हिय, सुह, खम, णिस्सेयस, आणुगामियं ।

—त्ति बेमि ।

षष्ठ उद्देसो

६७. जे भिक्खू एगेण वत्थेण परिवुसिए पायबिईएण, तस्स णो एवं भवइ—बिइय वत्थ जाइस्सामि ।

६८. से अहेसणिज्जं वत्थ जाएज्जा अहापरिग्गहियं वत्थं धारेज्जा । णो धोएज्जा, णो रएज्जा, णो धोय-रत्त वत्थ धारेज्जा । अपलिओवमाणे गामतरेसु, ओमचेलिए, एय खु वत्थधारिस्स सामग्गिय ।

६९. अह पुण एव जाणेज्जा—उवाइक्कते खलु हेमते, गिम्हे पडिवण्णे, अहापरिजुण्ण वत्थ परिट्ठवेज्जा । अदुवा अचेले ।

७०. लाघविय आगमणाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

७१ जमेयं भगवया पवेइय, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ।

७२. जस्स ण भिक्खुस्स एवं भवइ — एगो अहमंसि, ण मे अत्थि कोइ, ण याहमवि कस्सइ, एव से एगागिणमेव अप्पाण समभिजाणिज्जा ।

७३ लाघविय आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

७४. जमेय भगवया पवेइय, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ।

६६. यही विमोह का आयतन है, हितकर, सुखकर, क्षेमकर, नि श्रेयस्कर और आनुगामिक है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

षष्ठ उद्देशक

६७ जो भिक्षु एक वस्त्र और दूसरे पात्र की मर्यादा रखता है, उसके लिए ऐसा भाव नही होता—दूसरे वस्त्र की याचना करूँगा।

६८ वह यथा-एषणीय वस्त्रो की याचना करे। यथा-परिगृहीत वस्त्रो को धारण करे। न धोए, न रगे और न धोए-रगे हुए वस्त्रो को धारण करे। ग्रामान्तर होते समय उन्हे न छिपाए, कम धारण करे, यही वस्त्रधारी की सामग्री है।

६९ भिक्षु यह जाने कि हेमत बीत गया है, ग्रीष्म आ गया है, तो यथा-परिजीर्ण वस्त्रो का परिष्ठापन/विसर्जन करे अथवा अचेल/निवस्त्र हो जाए।

७० लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

७१ भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप मे जानकर सब प्रकार से, सम्पूर्ण रूप मे समत्व का ही पालन करे।

७२ जिस भिक्षु को ऐसा प्रतीत होता है — मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नही है, मैं भी किसी का नही हूँ। इस प्रकार वह भिक्षु आत्मा को एकाकी समझे।

७३ लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

७४. भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप मे जानकर सब प्रकार से समत्व का ही पालन करे।

७५. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा असण वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेमाणे णो वामाओ हणुयाओ दाहिण हणुय सचारेज्जा आसाएमाणे, दाहिणाओ वा हणुयाओ वाम हणुय णो सचारेज्जा आसाएमाणे, से अणासायमाणे।

७६. लाघविय आगममाणे, तवे से अभिसमण्णागए भवइ।

७७. जमेय भगवया पवेइय, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया।

७८ जस्स ण भिक्खुस्स एव भवइ—से गिलामि च खलु अहं इमसि समए इम सरीरग अणुपुव्वेण परिवहित्तए, से आणुपुव्वेण आहारं सवट्टेज्जा, आणुपुव्वेण आहार सवट्टेत्ता, कसाए पयणुए किच्चा, समाहियच्चे फलगावयट्ठी।

७९. उट्ठाय भिक्खू अभिनिव्वुडच्चे।

८०. अणुपविसित्ता गाम वा, णगर वा, खेड वा, कव्वड वा, मडब वा, पट्टण वा, दोणमुह वा, आगर वा, आसम वा, सण्णिवेस वा, णिगम वा, रायहाणिं वा, तणाइ जाएज्जा, तणाइ जाएत्ता, से तमायाए एगगतमवक्कमेज्जा, एगतमवक्कमेत्ता अप्पडे अप्प-पाणे अप्प-बीए अप्प-हरिए अप्पोसे अप्पोदए अप्पुत्तिग-पणग-दग-मट्टिय-मक्कडासताणए, पडिलेहिय-पडिलेहिय, पमज्जिय-पमज्जिय तणाइ सथरेज्जा, तणाइ सथरेत्ता एत्थ वि समए इत्तरियं कुज्जा।

८१. त सच्चं सच्चावाई ओए तिण्णे छिण्ण-कहंकहे आईयट्ठे अणाईए चिच्चाण भेऊरं काय, सविहूणिय विरूवरूवे परिसहोवसग्गे अस्सिं विस्स भइत्ता भेरवमणुचिण्णे।

८२. तत्थावि तस्स कालपरियाए से तत्थ वि अंतिकारए।

७५. भिक्षु या भिक्षुणी अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य का आहार करते समय आस्वाद लेते हुए बाएँ जबडे से दाएँ जबडे मे सचार न करे, आस्वाद लेते हुए दाएँ जबडे से बाएँ जबडे मे सचार न करे। वे अनास्वादी हो।

७६. लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

७७ भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप मे जानकर सब प्रकार से सम्पूर्ण रूप से समत्व का ही पालन करे।

७८ जिस भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मैं इस समय इस शरीर को अनुपूर्वक परिवहन करने मे ग्लान/असमर्थ हूँ। वह क्रमश आहार का सवर्तन/सक्षेप करे। क्रमश आहार का सवर्तन कर, कषायो को प्रतनु/कृश कर समाधि मे काष्ठ-फलकवत् निश्चल बने।

७९ संयम उद्यत भिक्षु अभिनिवृत्त बने।

८० ग्राम, नगर, खेडा, कर्बट/कस्बा, मडम्ब/बस्ती, पत्तन, द्रोणमुख/बन्दरगाह, आकर/खान, आश्रम, सन्निवेश/धर्मशाला, निगम या राजधानी मे प्रवेश कर तृण की याचना करे। तृण की याचना कर, उसे प्राप्त कर एकान्त मे चला जाए। एकान्त मे जाकर अण्ड-रहित, प्राणी-रहित, बीज-रहित, हरित-रहित, ओस-रहित, उदक-रहित, पतग, पनक/काई, जलमिश्रित-मिट्टी-मकडी-जाल से रहित, स्थान को सम्यक् प्रतिलेख कर प्रमार्जित कर तृण का सथार/बिछौना करे। तृण सस्तार कर उसी समय 'इत्वरिक', समाधि-मरण स्वीकार करे।

८१ यही सत्य है। सत्यवादी, ओजस्वी, तीर्ण, वक्तव्य-छिन्न/मौनव्रती अतीतार्थ/कृतार्थ, अनातीत/बन्धनमुक्त साधक भगुर शरीर को छोडकर, विविध प्रकार के परीषहो-उपसर्गो को धुन कर इस सत्य मे विश्वास कर के कठोरता का पालन करता है।

८२. काल-मृत्यु प्राप्त होने पर वह भी कर्मान्त-कारक हो जाता है।

८३. इच्चेयं विमोहायतणं हियं, सुहं, खमं, णिस्सेयसं, अणुगामियं ।

—त्ति बेमि ।

सत्तम उद्देसो

८४. जे भिक्खू अचेले परिवुसिए, तस्स ण एवं भवइ—चाएमि अहं तणफासं अहियासित्तए, सीयफास अहियासित्तए, तेउफासं अहियासित्तए, दंस-मसगफास अहियासित्तए, एगयरे अण्णयरे विरूवरूवे फासे अहियासित्तए, हिरिपडिच्छायण चह णो सचाएमि अहियासित्तए, एवं से कप्पइ कडिवधणं धारित्तए ।

८५ अदुवा तत्थ परक्कमंत भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति, सीयफासा फुसति, तेउफासा फुसति, दस-मसगफासा फुसति, एगयरे अण्णयरे विरूवरूवे फासे अहियासेइ अचेले ।

८६. लाघविय आगममाणे तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

८७ जमेय भगवया पवेइय, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ।

८८. जस्स ण भिक्खुस्स एवं भवइ—अह च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं असणं वा पाण वा खाइम वा साइम वा आहट्टु दलइस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि ।

८९. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं असण वा पाण वा खाइम वा साइम वा आहट्टु दलइस्सामि, आहडं च णो साइज्जिस्सामि ।

८३ यही विमोह का आयतन है, हितकर, सुखकर, क्षेमकर, निःश्रेयस्कर और आनुगामिक है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

सप्तम उद्देशक

८४ जो भिक्षु अचेल रहने की पर्युपासना करता है, उसे ऐसा होता है — मैं तृण-स्पर्श/तृण-पीडा का त्याग करता हूँ, सहन करता हूँ, शीत-स्पर्श सहन करता हूँ, तेजस्-स्पर्श सहन करता हूँ, दश-मसक-स्पर्श सहन करता हूँ, लज्जा-प्रतिच्छादन का मैं त्याग नही करता हूँ, सहन करता हूँ। इस प्रकार वह कटि-बन्धन को धारण करने मे समर्थ होता है।

८५. अथवा पराक्रम करते हुए, अचेल तृण-स्पर्श का स्पर्श करते है, शीत-स्पर्श का स्पर्श करते है, तेजस्-स्पर्श का स्पर्श करते है, दश-मसक-स्पर्श का स्पर्श करते हैं। अचेल विविध प्रकार के अनुकूल-प्रतिकूल स्पर्श सहन करता है।

८६ लघुता का आगमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

८७ भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप मे जानकर सब प्रकार से सम्पूर्ण रूप से समत्व का ही पालन करे।

८८ जिस भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मैं अन्य भिक्षुओ को अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य लाकर दूँगा और लाया हुआ उपभोग करूँगा।

८९ जिस भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मै अन्य भिक्षुओ को अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य लाकर दूँगा और लाया हुआ उपभोग नही करूँगा।

९०. जस्स ण भिक्खूस्स एवं भवइ—अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहट्टु णो दलइस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि ।

९१ जस्स ण भिक्खुस्स एव भवइ—अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं असणं वा पाण वा खाइम वा साइम वा आहट्टु णो दलइस्सामि, आहड च णो साइज्जिस्सामि ।

९२. अह च खलु तेण अहाइरित्तेणं अहेसणिज्जेणं अहापरिग्गहिएणं असणेण वा पाणेण वा खाइमेण वा साइमेण वा अभिकख साहम्मिस्स कुज्जा वेयावडिय करणाए ।

९३ अह वावि तेण अहाइरित्तेणं अहेसणिज्जेणं अहापरिग्गहिएणं असणेण वा पाणेण वा खाइमेण वा साइमेण वा अभिकख साहम्मिएहिं कीरमाणं वेयावडिय साइज्जिस्सामि ।

९४. लाघविय आगममाणे, तवे से अभिसमण्णागए भवइ ।

९५. जमेय भगवया पवेइय, तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ।

९६ जस्स ण भिक्खुस्स एव भवइ—से गिलामि च खलु अहं इमंसि समए इम सरीरग अणुपुव्वेण परिवहित्तए, से आणुपुव्वेण आहारं सवट्टेज्जा, आणुपुव्वेण आहार सवट्टेत्ता, कसाए पयणुए किच्चा, समाहियच्चे फलगावयट्ठी ।

९७. उट्ठाय भिक्खू अभिनिव्वुडच्चे ।

९० जिस भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मै ग्रन्य भिक्षुग्रो को ग्रशन, पान, खाद्य ,या स्वाद्य लाकर नही दूँगा, परन्तु लाया हुग्रा उपभोग करूँगा।

९१ जिम भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मै ग्रन्य भिक्षुग्रो को अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य लाकर न दूँगा और न लाया हुग्रा उपभोग करूँगा।

९२ मै यथारिक्त/ग्रवशिष्ट यथा-एपणीय, यथा-परिगृहीत अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से ग्रभिकाक्षित सार्धमिक का द्वारा किये जाने वाले वैयावृत्य करूँगा।

९३. मै भी यथारिक्त, यथा-एपणीय, यथा-परिगृहीत, अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य से अभिकाक्षित सार्धमिक द्वारा किये जाने वाले वैयावृत्य को स्वीकार करूँगा।

९४ लघुता का ग्रागमन होने पर वह तप-समन्नागत होता है।

९५ भगवान् ने जैसा प्रवेदित किया है, उसे उसी रूप मे जानकर सब प्रकार से सम्पूर्ण रूप से समत्व का ही पालन करे।

९६ जिस भिक्षु के ऐसा भाव होता है — मैं इस समय इस शरीर को ग्रनुपूर्वक परिवहन करने मे ग्लान/असमर्थ हूँ। वह क्रमश ग्राहार का सवर्तन/सक्षेप करे। क्रमश ग्राहार का सवर्तन कर, कपायो को प्रतनु/कृश कर समाधि मे काष्ठ-फलकवत् निश्चल बने।

९७ सयम उद्यत भिक्षु ग्रभिनिवृत्त बने।

९८. अणुपविसित्ता गाम वा, णगर वा, खेड वा, कव्वड वा, मडव वा, पट्टण वा, दोणमुह वा, आगर वा, आसम वा, सण्णिवेस वा, णिगम वा, रायहाणि वा, तणाइ जाएज्जा, तणाइ जाएत्ता, से तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमेत्ता अप्पडे अप्प-पाणे अप्प-बीए अप्प-हरिए अप्पोसे अप्पोदए अप्पुत्तिग-पणग-दग-मट्टिय-मक्कडासंताणए, पडिलेहिय-पडिलेहिय, पमज्जिय-पमज्जिय तणाइं सथरेज्जा, तणाइ सथरेत्ता एत्थ वि समए कायं च, जोगं च, इरिय च, पच्चक्खाएज्जा ।

९९ त सच्च सच्चावाई ओए तिण्णे छिण्ण-कहकहे आईयट्ठे अणाईए चिच्चाण भेऊरं काय, सविहूणिय विरूवरूवे परिसहोवसग्गे अस्सि विस्स भइत्ता भेरवमणुचिण्णे ।

१००. तत्थावि तस्स कालपरियाए से तत्थ वि अंतिकारए ।

१०१. इच्चेय विमोहायतण हियं, सुह, खमं, णिस्सेयस, अणुगामिय ।

—त्ति बेमि ।

अट्ठमो उद्देसो

१०२. अणुपुव्वेण विमोहाइं, जाइ धीरा समासज्ज ।
वसुमतो मइमतो, सव्व णच्चा अणेलिसं ।।

१०३ दुविह पि विइत्ताणं, बुद्धा धम्मस्स पारगा ।
अणुपुव्वीए सखाए, आरभाओ तिउट्टइ ।।

९८ ग्राम, नगर, खेडा, कर्वट/कस्वा, मडम्ब/बस्ती, पत्तन, द्रोणमुख/बन्दरगाह, आकर/खान, आश्रम, सन्निवेश/धर्मशाला, निगम या राजधानी मे प्रवेश कर तृण की याचना करे। तृण की याचना कर, उसे प्राप्त कर एकान्त मे चला जाए। एकान्त मे जाकर अण्ड-रहित, प्राणी-रहित, बीज-रहित, हरित-रहित, ओस-रहित, उदक-रहित, पतग, पनक/काई, जलमिश्रित-मिट्टी-मकडी-जाल से रहित, स्थान को सम्यक् प्रतिलेख कर प्रमार्जित कर तृण का सथार/सस्तार/विछोना करे। तृण-सस्तार कर उसी समय शरीर योग और ईर्या-पथ/गमनागमन का प्रत्याख्यान करे।

९९ यही सत्य है। सत्यवादी, ओजस्वी, तीर्ण, वक्तव्य-छिन्न/मौनव्रती, अतीतार्थ/कृतार्थ, अनातीत/बन्धनमुक्त साधक भगुर शरीर को छोडकर, विविध प्रकार के परीषहो-उपसर्गो को धुन कर इस सत्य मे विश्वास कर के कठोरता का पालन करता है।

१०० काल/मृत्यु प्राप्त होने पर वह भी कर्मान्त-कारक हो जाता है।

१०१ यही विमोह का आयतन है, हितकर, सुखकर, क्षेमकर, नि श्रेयस्कर और अनुगामिक है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

अष्टम उद्देशक

१०२ जो धीर-पुरुष वसुमान् एवं मतिमान है, उन्होने असाधारण को जानकर क्रमश विमोह को धारण करते है।

१०३ बुद्ध-पुरुष धर्म के पारगामी होते है। क्रमश. बाह्य एव आभ्यन्तर दोनो को जानकर-समझकर आरम्भ/हिंसा से मुक्त होते हैं।

१०४. कसाए पयणू किच्चा, अप्पाहारो तितिक्खए ।
अह भिक्खू गिलाएज्जा, आहारस्सेव अतिय ॥

१०५. जीविय णाभिकखेज्जा, मरण णोवि पत्थए ।
दुहतोवि ण सज्जेज्जा, जीविए मरणे तहा ॥

१०६. मज्झत्थो णिज्जरापेही, समाहिमणुपालए ।
अतो बहिं विऊसिज्ज, अज्झत्थं सुद्धमेसए ॥

१०७ ज किंचुवक्कमं जाणे, आउक्खेमस्स अप्पणो ।
तस्सेव अतरद्धाए, खिप्प सिक्खेज्ज पंडिए ॥

१०८. गामे वा अदुआ रण्णे, थंडिलं पडिलेहिया ।
अप्पपाण तु विण्णाय, तणाइ सथरे मुणी ॥

१०९ अणाहारो तुअट्टेज्जा, पुट्ठो तत्थ हियासए ।
णाइवेल उवचरे, माणुस्सेहिं वि पुट्ठओ ॥

११०. ससप्पगा य जे पाणा, जे य उड्ढमहोचरा ।
भुजंति मस-सोणिय, ण छणे ण पमज्जए ॥

१११ पाणा देह विहिंसति, ठाणाओ ण वि उब्भमे ।
आसवेहि विवित्तेहिं, तिप्पमाणेहियासए ॥

११२. गथेहिं विवित्तेहिं, आउकालस्स पारए ।
पग्गहियतरंग चेय, दवियस्स वियाणओ ॥

११३. अय से अवरे धम्मे, णायपुत्तेण साहिए ।
आयवज्जं पडीयार, विजहिज्जा तिहा-तिहा ॥

११४. हरिएसु ण णिवज्जेज्जा, थंडिल मुणिआ सए ।
विउसिज्ज अणाहारो, पुट्ठो तत्थहियासए ॥

१०४. यह भिक्षु कषाय को कृश एवं आहार को कम कर तितिक्षा/सहन करे। अन्तकाल मे आहार की ग्लानि करे।

१०५ जीवन की अभिकाक्षा न करे और मरण की प्रार्थना न करे। जीवन तथा मरण — दोनो को न चाहे।

१०६ मध्यस्थ और निर्जराप्रेक्षी समाधि का अनुपालन करे। अन्तर एव बाह्य का विसर्जन कर शुद्ध अध्यात्म की एषणा करे।

१०७. अपनी आयु की कुशलता का जो कुछ भी उपक्रम है, उसे समझे। पण्डित-पुरुष उसके ही अन्तर मार्ग / आयु-काल मे शीघ्र [समाधि-मरण] की शिक्षा ग्रहण करे।

१०८. मुनि ग्राम या अरण्य मे प्राणरहित स्थण्डिल/स्थल को प्रतिलेख कर तथा जानकर तृण-सरतार करे।

१०९ वह अनाहार का प्रवर्तन करे। मनुष्य कृत स्पर्शों से स्पृष्ट होने पर सहन करे। वेला/समय का उल्लघन न करे।

११० ऊर्ध्वचर, अधोचर और ससर्पक प्राणी मास और रक्त का भोजन करे तो उनका न हनन करे, न निवारण।

१११ ये प्राणी शरीर का घात करते हैं, इसलिए स्थान न छोड़े। आस्रव से अलग हो कर आत्म-तृप्त होता हुआ उपसर्गों को सहन करे।

११२ ग्रन्थियो से विमुक्त होकर आयुकाल का पारगामी होता है। द्रविक भिक्षु के लिए यह अनशन अग्राह्य है, ऐसा जानना चाहिये।

११३ ज्ञातपुत्र द्वारा साधित यही धर्म श्रेष्ठ है। मन, वचन, काया के त्रिविध योग से प्रतिचार/सेवा स्वय के लिए वर्जनीय है, अत. त्याग दे।

११४ हरियाली पर निवर्तन/विश्राम न करे, स्थण्डिल/स्थान को जानकर/प्रतिलेख कर सोए। अनाहारी भिक्षु कायोत्सर्ग कर वहाँ स्पर्शों को सहन करे।

११५. इंदिएहि गिलायंते, समिय साहरे मुणी ।
तहावि से अगरिहे, अचले जे समाहिए ।।

११६ अभिक्कमे पडिक्कमे, सकुचए पसारए ।
काय-साहारणट्ठाए, एत्थं वावि अचेयणे ।।

११७. परक्कमे परिकिलंते, अदुवा चिट्ठे अहायए ।
ठाणेण परिकिलते, णिसिएज्जा य अंतसो ।।

११८. आसीणे णेलिस मरण, इंदियाणि समीरए ।
कोलावास समासज्ज, वितह पाउरेसए ।।

११९. जओ वज्ज समुप्पज्जे, ण तत्थ अवलवए ।
तओ उक्कसे अप्पाण, सव्वे फासेहियासए ।।

१२० अयं चायततरे सिया, जो एवं अणुपालए ।
सव्वगायणिरोहेवि, ठाणाओ ण वि उब्भमे ।।

१२१. अयं से उत्तमे धम्मे, पुव्वट्ठाणस्स पग्गहे ।
अचिर पडिलेहित्ता, विहरे चिट्ठ माहणे ।।

१२२. अचित्तं तु समासज्ज, ठावए तत्थ अप्पग ।
वोसिरे सव्वसो काय, ण मे देहे परीसहा ।।

१२३. जावज्जीवं परीसहा, उवसग्गा इय सखया ।
सवुडे देहभेयाए, इय पण्णेहियासए ।।

१२४. भेउरेसु ण रज्जेज्जा, कामेसु बहुयरेसु वि ।
इच्छा-लोभ ण सेवेज्जा, धुव वण्ण सपेहिया ।।

११५ मुनि इन्द्रियों से ग्लानि करता हुआ समित होकर स्थित रहे। इस प्रकार जो अचल और समाहित है, वह अगर्ह्य/अनिन्द्य है।

११६ अभिक्रम, प्रतिक्रम, सकुचन, प्रसारण, शरीर-साधारणीकरण की स्थिति मे अचेतन/समाविस्थ रहे।

११७. परिक्लान्त होने पर पराक्रम करे अथवा यथामुद्रा मे स्थित रहे। स्थित रहने से परिक्लान्त होने पर अन्त मे बैठ जाए।

११८ समाधि मरण मे आसीन साधक इन्द्रियो का समीकरण करे। कोलावास/पीठासन को वितथ्य समझकर अन्य स्थिति की एषणा करे।

११९ जिससे वज्र/कठोर-भाव उत्पन्न हो, उसका अवलम्बन न ले। उससे अपना उत्कर्ष करे। सभी स्पर्शो को सहन करे।

१२० यह [समाधिमरण] उत्तमतर है। जो साधक इस प्रकार अनुपालन करता है, वह सम्पूर्ण गात्र के निरोध होने पर भी स्थान से भटकता नहीं है।

१२१ पूर्व स्थान का ग्रहण किये रहना ही उत्तम धर्म है। अचिर/स्थान का प्रतिलेख कर माहन-पुरुष स्थित रहे।

१२२ अचित्त को स्वीकार कर स्वय को वहाँ स्थापित करे। सर्वश काया का विसर्जन (कायोत्सर्ग) कर दे। परीषह है, किन्तु यह शरीर मेरा नही है।

१२३ परिषह और उपसर्ग जीवन-पर्यन्त हैं। यह जानकर संवृत बने। देह-भेद होने पर प्राज्ञ-पुरुष सहन करे।

१२४. विविध प्रकार के क्षणभंगुर काम-भोगो में रंजित न हो। ध्रुव वर्ण (मोक्ष) का सप्रेक्षक इच्छा-लोभ का सेवन न करे।

१२५ सासएहि णिमतेज्जा, दिव्वं मायं ण सद्दहे ।
त पडिवुज्झ माहणे, सव्वं णूम विहूणिया ॥

१२६. सव्वट्ठेहि अमुच्छिए, आउकालस्स पारए ।
तितिक्ख परम णच्चा, विमोहण्णयर हिय ॥

—त्ति बेमि ।

१२५ शाश्वत को निमन्त्रित करे। दिव्य माया पर श्रद्धा न करे। माहन-पुरुष इसे समझे और सभी प्रकार के छल-कपट को छोड दे।

१२६ सभी अर्थों/विषयो से अमूर्छित आयुकाल का पारगामी होता है। तितिक्षा को परम जानकर हितकारी अनन्य विमोह को स्वीकार करे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

नवमं अज्झयणं

उवहाण-सुयं

नवम अध्ययन

उपधान-श्रुत

पूर्व स्वर

प्रस्तुत अध्याय 'उपधान श्रुत' है। यह व्यक्तित्व वेद का ही उपनाम है। सामीप्यपूर्वक सुनने के कारण भी इस अध्याय का यह नामकरण हुआ है।

प्रस्तुत अध्याय महावीर के महाजीवन का खुल्ला दस्तावेज है। प्रस्तुत अध्याय का नायक सकल्प-धनी/लौह-पुरुष की सघर्षजयी जीवन-यात्रा का अनूठा उदाहरण है। महावीर आत्म-विजय बनाम लोक-विजय का पर्याय है। वे स्वय ही प्रमाण है अपने परमात्म-स्वरूप के। उनकी भगवत्ता जन्मजात नहीं, अपितु कर्म-जन्य है। उन्होंने खुद से लडकर ही खुद की भगवत्ता/यशस्विता के मापदण्ड प्रस्तुत किये। सघर्ष के सामने घुटने टेकना उनके आत्मयोग मे कहाँ था? उनका कुन्दन तो सघर्ष की आँच मे ही निखरा था।

कुछ लोग जन्म से महान होते है तो कुछ महानता प्राप्त कर लेते हैं। महावीर के मामले मे ये दोनो ही तथ्य इस कदर गुथे हुए है कि उनका व्यक्तित्व सघर्षो का सगम बनकर उभरा है। उनके जीवन मे कदम-कदम पर परीक्षाओं/ कसौटियों की घडियाँ आई, किन्तु वे हर बार सौ टच खरे उतरे और सफलता उनके सामने सदा नतमस्तक हुई।

महावीर राजकुमार थे। घर-गृहस्थी के बीच रहते भी उनके मन पर लेप कहाँ था ससार का? कमल की पखुडियों की तरह ऊपर था उनका सिंहासन/ जीवन-शासन, दुनियादारी के उथल-पुथल मचाते जल से।

प्रकृति की कलरवता ने महावीर को अपने आँचल मे आने के लिए निमत्रित किया। और उनके वीर-चरण वर्धमान हो गये वीतराग-पगडण्डी पर। उनका महाभिनिष्क्रमण/महानिष्क्रमण तो सत्य प्राप्ति का जागरूक अभियान था। उनका रोम-रोम प्रयत्नशील बना जीवन के गुह्यतम सत्यों का आविष्कार करने मे।

महावीर ने स्वय को शिशु जैसा बना लिया। उनकी साधनात्मक जीवन-चर्या यद्यपि चैतन्य-विकास के इतिहास मे एक नये अध्याय का सूत्रपात थी, किन्तु भोली जनता ने उसे अपनी लोक-सस्कृति के लिए खौफनाक समझा। उन्हे मारा, पीटा, दुत्कारा, औंधा लटकाया। जितनी अवहेलना, उपेक्षा, ताडना और तर्जना महावीर को भोगनी, झेलनी पडी, उसका साम्य कौन कर सकता है। ये सब तो साधन थे विश्व को गहराई से समझने के। आखिर उनका तप रङ्ग लाया। परम-ज्ञान ने सदा सदा के लिए उनके साथ वासा कर लिया। फिर तो उनकी पगध्वनि भी ससृति के लिए अध्यात्म की स्फूर्ति बन गई।

महावीर तो धवल हिमालय के उत्तुङ्ग शिखर है। उनकी अगुली थाम कर, चरणों मे शीश नमाकर पता नहीं अब तक कितने-कितने लोगों ने स्वय का सरगम सुना है। वे तो सर्वोदय-तीर्थ है। उनके घाट से क्षुद्र भी तिर गए।

महावीर की जीवन-चर्या अस्तित्व की विरलतम घटना है। निष्कम्प, निर्धूम, चैतन्य-ज्योति ही महावीर का परिचय-पत्र है। ध्यान उनकी कुजी है और जागरू-कता/अप्रमत्तता उनका व्यक्तित्व। वे श्रद्धा नहीं, अपितु शोध है। श्रद्धा खोजने से पहले मानना है और शोध तथ्य का उघाडना है। सत्यद्रष्टा के लिए शोध प्राथमिक होता है और श्रद्धा आनुषगिक। सत्य को तथ्य के माध्यम से उद्घाटित करने के कारण ही वे तथागत हैं और सर्वोदयी नेतृत्व वहन करने की वजह से तीर्थङ्कर हैं। उनकी बाते विज्ञान की प्रयोगशालाओं मे भी प्रतिष्ठित होती जा रही हैं। महावीर, सचमुच विज्ञान और गणित की विजय के अद्भुत स्मारक हैं।

प्रस्तुत अध्याय महावीर के साधनात्मक जीवन का सहज वर्ण विन्यास है। यहाँ उनका बढा चढाकर बखान नहीं है, अपितु वास्तविकता का प्रामाणिक छाया-कन है। इस अध्याय का आकाश मुमुक्षु/भिक्षु के सामने ज्यों-ज्यों खुलता जाएगा साधना के आदर्श मापदड उभरते चले आएँगे। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ उन्हीं की विराट अस्मिता है। सन्यस्त जीवन की ऊँची से ऊँची आचार-सहिता का नाम आयार-सुत्त है, जो सद्विचार की वर्णमाला मे सदाचार का प्रवर्तन करता है।

पढमो उद्देसो

१. अहासुयं वइस्सामि, जहा से समणे भगवं उट्ठाय ।
सखाए तंसि हेमंते, अहुणा पव्वइए रीयत्था ।।

२ णो चेविमेण वत्थेण, पिहिस्सामि तंसि हेमते ।
से पारए आवकहाए, एय खु अणुधम्मियं तस्स ।।

३. चत्तारि साहिए मासे, बहवे पाण-जाइया आगम्म ।
अभिरुज्भ काय विहरिंसु, आरुसियाणं तत्थ हिंसिसु ।।

४. सवच्छरं साहिय मास, ज ण रिक्कासि वत्थगं भगवं ।
अचेलए तओ चाई, तं वोसज्ज वत्थमणगारे ।।

५. अदु पोरिसिं तिरियं भित्तिं, चक्खुमासज्ज अतसो भायइ ।
अह चक्खु-भीया सहिया, त 'हता हता' बहवे कंदिसु ।।

६. सयणेहिं विइमिस्सेहिं, इत्थीओ तत्थ से परिण्णाय ।
सागारिय ण सेवे, इय से सय पवेसिया भाइ ।।

७. जे के इमे अगारत्था, मीसीभाव पहाय से भाइ ।
पुट्ठो वि णाभिभासिसु, गच्छइ णाइवत्तई अंजू ।।

प्रथम उद्देशक

१ जैसा सुना है, वैसा कहूँगा । वे श्रमण भगवान् महावीर अभिनिष्क्रमण एव ज्ञान-प्राप्त कर हेमन्त मे शीघ्र विहार कर गए ।

२. [भगवान् ने संकल्प किया] उस हेमन्त मे इस वस्त्र से शरीर को आच्छादित नही करूँगा । वे पारगामी जीवन-पर्यन्त अनुधार्मिक रहे, यही उनकी विशेषता है ।

३ चार माह से अधिक समय तक बहुत से प्राणी आकर एव चढकर शरीर पर चलते और उस पर आरूढ होकर काट लेते ।

४. भगवान् ने सवत्सर (एक वर्ष) से अधिक माह तक उस वस्त्र को नही छोडा । इसके बाद उस वस्त्र को भगवान् ने .नही छोडा । इसके बाद उस वस्त्र को छोडकर अनगार महावीर अचेलक एव त्यागी हो गए ।

५ अथवा पुरुष-प्रमाण/प्रहर-प्रहर तक तिर्यग्भित्ति को चक्षु से देखकर अन्तत ध्यान-मग्न हो गए । चक्षु से भयभीत बालक उनके लिए 'हत ! हत !' चिल्लाने लगे ।

६ जनसकुल स्थानो पर महावीर स्त्रियो को जानकर भी सागारिक/ग्राम्यधर्म का सेवन नही करते थे । वे स्वय मे प्रवेश कर ध्यान करते थे ।

७. जो कोई भी आगार उनके सम्पर्क मे आते, वे ऋजु परिणामी भगवान् उन्हे छोडकर ध्यान करते थे । पूछे जाने पर अभिभाषण नही करते, अपने पथ पर चलते और उसका अतिक्रमण नही करते ।

८. णो सुगरमेयमेगेसिं, णाभिभासे य अभिवायमाणे ।
हयपुव्वो तत्थ दंडेहि, लूसियपुव्वो अप्पपुण्णेहि ।।

९. फरुसाइं दुत्तितिक्खाइं, अइअच्च मुणी परक्कममाणे ।
आघाय-णट्ट-गीयाइ, दंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं ।।

१०. गढिए मिहुकहासु, समयंमि णायसुए विसोगे अदक्खू ।
एयाइ सो उरालाइ, गच्छइ णायपुत्ते असरणयाए ।।

११. अविसाहिए दुवे वासे, सीओदं अभोच्चा णिक्खंते ।
एगत्तगए पिहियच्चे, से अहिण्णायदंसणे संते ।।

१२-१३. पुढविं च आउकायं, तेउकायं च वाउकायं च ।
पणगाइं बीय-हरियाइ, तसकायं च सव्वसो णच्चा ।।
एयाइं संति पडिलेहे, चित्तमंताइं से अभिण्णाय ।
परिवज्जियाण विहरित्था, इय संखाए से महावीरे ।।

१४. अदु थावरा तसत्ताए, तसा य थावरत्ताए ।
अदु सव्वजोणिया सत्ता, कम्मुणा कप्पिया पुढो बाला ।।

१५. भगवं च एवमण्णेसिं, सोवहिए हु लुप्पई बाले ।
कम्मं च सव्वसो णच्चा, तं पडियाइक्खे पावगं भगवं ।।

१६. दुविहं समिच्च मेहावी, किरियमक्खायणेलिसं णाणी ।
आयाण-सोयमइवाय-सोयं, जोगं च सव्वसो णच्चा ।।

१७. अइवाइयं अणाउट्टे, सयमण्णेसिं अकरणयाए ।
जस्सित्थिओ परिण्णाया, सव्वकम्मावहाओ से अदक्खू ।।

८. भगवान् अभिवादन करने वालो से, अपुण्यवानो द्वारा डडो से पीटे एव नोचे जाने पर भी अभिभाषण नही करते। यह सभी के लिए सुकर/सुलभ नही है।

९ मुनि/महावीर परुष दु सह वचनो की अवगणना करके पराक्रम करते हुए आख्यायिका, नाट्य, गीत दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्ध नही करते।

१० मिथ-कथा/काम-कथा के समय ज्ञातसुत विशोक-द्रष्टा हुए। वे ज्ञातपुत्र इन उपसर्गो/उपद्रवो को स्मृति मे न लाते हुए विचरण करते थे।

११ एकत्वभावी, अकषायी, अभिज्ञान-द्रष्टा एव शान्त महावीर ने दो वर्ष से कुछ अधिक समय तक शीतोदक/सचित्त जल का उपभोग न कर निष्क्रमण किया।

१२-१३ पृथ्वीकाय, अप्काय तेजस्काय, वायुकाय, पनक/फफूंदी, बीज, हरित और त्रसकाय को सर्वस्व जानकर ये सचित हैं, जीव है, ऐसा प्रतिलेख कर, जानकर, समझकर वे महावीर आरम्भ/हिंसा का वर्जन कर विहार करने लगे।

१४ स्थावर या त्रस-योनि मे उत्पन्न, त्रस या स्थावर-योनि मे उत्पन्न या सर्व-योनिक अस्तित्व वाले अज्ञानी जीव पृथक्-पृथक कर्म से कल्पित हैं।

१५ भगवान् ने माना कि सोपाधिक (परिगृही) अज्ञ ही क्लेश पाता है। भगवान् ने कर्म को सर्वश. जानकर उस पाप का प्रत्याख्यान किया।

१६ ज्ञानी और मेधावी भगवान् ने दोनो की समीक्षा कर और इन्द्रिय-स्रोत, हिंसा-स्रोत तथा योग (मानसिक वाचिक, कायिक प्रवृत्ति) को सभी प्रकार से जानकर अप्रतिपादित का क्रिया प्रतिपादन किया।

१७. अतिपातिक एव अनाकुट्टिक/अहिंसक भगवान् हिंसा को स्वय तथा दूसरो के लिए अकरणीय मानते थे। जिसके लिए यह ज्ञात है कि स्त्रियाँ समस्त कर्मो का आवाहन करने वाली है, वही द्रष्टा है।

१८. अहाकड ण से सेवे, सव्वसो कम्मुणा य अदक्खू ।
जं किंचि पावगं भगव, तं अकुव्वं वियड भुंजित्था ॥

१९. णो सेवई य परवत्थ, परपाए वि से ण भुंजित्था ।
परिवज्जियाण ओमाणं, गच्छइ संखडिं असरणाए ॥

२०. मायण्णे असण-पाणस्स, णाणुगिद्धे रसेसु अपडिण्णे ।
अच्छिंपि णो पमज्जिया, णोवि य कडूयए मुणी गायं ॥

२१. अप्पं तिरियं पेहाए, अप्प पिट्ठओ उपेहाए ।
अप्पं बुइएऽपडिभाणी, पथपेही चरे जयमाणे ॥

२२. सिसिरंसि अद्धपडिवण्णे, तं वोसिज्ज वत्थमणगारे ।
पसारित्तु बाहु परक्कमे, णो अवलंबियाण कंधंमि ॥

२३ एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।
बहुसो अपडिण्णेण, भगवया एवं रीयंति ॥

—त्ति बेमि ।

बीओ उद्देसो

२४ चरियासणाइं सेज्जाओ, एगइयाओ जाओ बुइयाओ ।
आइक्ख ताइं सयणासणाइं, जाइं सेवित्था से महावीरे ॥

२५. आवेसण-सभा-पवासु, पणियसालासु एगया वासो ।
अदुवा पलियट्ठाणेसु, पलालपुंजेसु एगया वासो ॥

१८ आधाकर्मी (उद्दिष्ट) आहार का भगवान् ने सेवन नही किया। वे सभी प्रकार से कर्म-द्रष्टा बने रहे। पाप के जो भी कारण थे, उनको न करते हुए भगवान् ने प्रासुक/निर्जीव आहार किया।

१९ वे परवस्त्र का सेवन नही करते थे परपात्र मे भोजन भी नहीं करते थे, अपमान का वर्जन कर अशरण-भाव से सखण्डि/भोजनशाला मे जाते थे।

२०. भगवान् अशन और पान की मात्रा के ज्ञाता थे, रसो मे अनुगृद्ध नही थे, अप्रतिज्ञ थे, आँख का भी प्रमार्जन नही करते थे, गात को खुजलाते भी नहीं थे।

२१ वे न तो तिरछे देखते थे और न पीछे देखते थे। वे बोलते नही थे, अप्रतिभाषी थे, पथप्रेक्षी और यतनापूर्वक चलते थे।

२२. वे अनगार वस्त्र का विसर्जन कर चुके थे। शिशिर ऋतु मे चलते समय बाहुओ को फैलाकर चलते थे। उन्हें कन्धो मे समेट कर नहीं चलते।

२३ मतिमान माहन भगवान् महावीर ने इस अनुक्रान्त/प्रतिपादित विधि का अप्रतिज्ञ होकर अनेक बार आचरण किया।

—ऐसा मै कहता हूँ।

द्वितीय उद्देशक

२४ [जम्बू ने सुधर्मा से निवेदन किया—] साधु-चर्या मे आसन और शय्या/निवास-स्थान:जो कुछ भी अभिहित है, उन शयनासनो को कहे, जिनका उनमहावीर ने सेवन किया।

२५ [महावीर ने] आवेशन/शून्यगृहो, सभाओ, प्याऊ और कभी पण्यशालाओ/दुकानो मे वास किया अथवा कभी पलितस्थानो एव पलाल-पुन्जो मे वास किया।

२६ आगंतारे आरामागारे, गामे णगरेवि एगया वासो।
सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले वि एगया वासो।।

२७. एएहिं मुणी सयणेहिं, समणे आसी पत्तेरस वासे।
राइं दिवं पि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिए झाइ।।

२८. णिद्दं पि णो पगामाए, सेवइ भगवं उट्ठाए।
जग्गावई य अप्पाणं, ईसिं साई या सी अपडिण्णे।।

२९. संबुज्झमाणे पुणरवि, आसिंसु भगवं उट्ठाए।
णिक्खम्म एगया राओ, बहिं चकमिया मुहुत्तागं।।

३०. सयणेहिं तस्सुवसग्गा, भीमा आसी अणेगरूवा य।
ससप्पगाय जे पाणा, अदुवा जे पक्खिणो उवचरंति।।

३१. अदु कुचरा उवचरंति, गामरक्खा य सत्तिहत्था य।
अदु गामिया उवसग्गा, इत्थी एगइया पुरिसा य।।

३२-३३ इहलोइयाइं परलोइयाइं, भीमाइं अणेगरूवाइं।
अवि सुब्भि-दुब्भि-गंधाइं, सद्दाइं अणेगरूवाइं।।
अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं।
अरइं रइं अभिभूय, रीयइ माहणे अबहुवाई।।

३४. स जणेहिं तत्थ पुच्छिंसु, एगचरा वि एगया राओ।
अव्वाहिए कसाइत्था, पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे।।

३५ अयमंतरंसि को एत्थ, अहमंसि त्ति भिक्खू आहट्टु।
अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए स कसाइए झाइ।।

२६ कभी आगन्तार/धर्मशाला, आरामागार/विश्रामगृह मे तो कभी ग्राम या नगर मे वास किया। कभी श्मशान या शून्यागार मे तो कभी वृक्षमूल मे वास किया।

२७ मुनि/भगवान् इन शयनो/वास-स्थलो मे तेरह वर्ष पर्यन्त प्रसन्नमना रहे। रात-दिन यतनापूर्वक अप्रमत्त एव समाहित भाव से ध्यान करते रहे।

२८ भगवान् प्रकाम/शरीर-सुख के लिए निद्रा भी नही लेते थे। उद्यत होकर अपने आपको जागृत करते थे। उनका किंचित् शयन भी अप्रतिज्ञ था।

२९ भगवान् जागृत होकर सम्बोधि-अवस्था मे ध्यानस्थ होते थे। निद्रावाधित होने पर कभी-कभी रात्रि मे बाहर निकल कर मुहूर्त भर चक्रमण करते थे।

३० शयनो वास-स्थानो मे जो ससर्पक प्राणी थे या जो पक्षी रहते थे, वे भगवान् पर अनेक प्रकार के भयकर उपसर्ग करते।

३१ अथवा कुचर/दुराचारी, शक्तिहस्त/दरवान, ग्रामरक्षक लोग उपसर्ग करते थे। अथवा एकाकी स्त्रियो और पुरुषो के ग्राम्यधर्मी उपसर्ग सहने पडते थे।

३२-३३ भगवान् ने अनेक प्रकार के ऐहलौकिक या पारलौकिक रूपो, अनेक प्रकार की सुगन्धो, दुर्गन्धो शब्दो एव विविध प्रकार के स्पर्शो को सदा समितिपूर्वक सहन किया। वे साहन-ज्ञानी अरति एव रति दोनो अबहुवादी/मौनव्रती होकर विचरण करते रहे।

३४ कभी-कभी रात्रि मे एकचरा/चोर या मनुष्यो द्वारा कुछ पूछे जाने पर भगवान् के अव्याहृत/मौन रहने के कारण वे कषायी/क्रोधी हो जाते थे। किन्तु भगवान् अप्रतिज्ञ होते हुए समाधि के प्रेक्षक बने रहे।

३५ यहाँ अन्दर कौन है ? [ऐसा पूछे जाने पर] मै भिक्षु हूँ ऐसा उत्तर देवे। उनके क्रोधित होने पर भगवान् तूष्णीक/चुप रहते। यह उनका उत्तम धर्म है।

३६. जसिप्पेगे पवेयंति, सिसिरे मारुए पवायंते ।
तंसिप्पेगे अणगारा, हिमवाए णिवायमेसंति ॥

३७. संघाडिओ पविसिस्सामो, एहा य समादहमाणा ।
पिहिया वा सक्खामो, अइदुक्खं हिमग-संफासा ॥

३८. तंसि भगवं अपडिण्णे, अहे वियडे अहियासए दविए ।
णिक्खम्म एगया राओ, ठाइए भगवं समियाए ॥

३९. एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।
बहुसो अपडिण्णेण, भगवया एवं रीयंति ॥

—त्ति बेमि ।

तीओ उद्देसो

४०. तणफासे सीयफासे य, तेउफासे य दंस-मसगे य ।
अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं ॥

४१. अह दुच्चर-लाढमचारी, वज्जभूमिं च सुब्भ णि भूमिं च ।
पंत सेज्जं सेविंसु, आसणगाणि चेव पंताणि ॥

४२ लाढेहिं तस्सुवसग्गा, बहवे जाणवया लूसिंसु ।
अह लूहदेसिए भत्ते, कुक्कुरा तत्थ हिंसिंसु णिवइंसु ॥

३६ जिस शिशिर मे कुछ लोग मारुत चलने पर काँपने लगते, उस हिमपात मे कुछ अनगार निर्वात/हवा रहित स्थान की एषरगा करते थे।

३७. कुछ सघाटी/उत्तरीय वस्त्र की कामना करते, कुछ ईंधन जलाते कुछ पिहित/आवरण (कम्बल आदि) चाहते, क्योंकि हिम-सस्पर्श अति दु खकर होता है।

३८ किन्तु उस परिस्थिति में भी अप्रतिज्ञ भगवान अघोविकट/खुले स्थान मे शीत सहन करते थे। वे सयमी भगवान् कभी-कभी रात्रि मे बाहर निकलकर समिति पूर्वक स्थित रहते।

३९ मतिमान माहन भगवान महावीर ने इस अनुक्रान्त/प्रतिपादित विधि का अप्रतिज्ञ होकर अनेक वार आचरण किया।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तृतीय उद्देशक

४०. भगवान् ने तृणस्पर्श, शीतस्पर्श, तेजस्पर्श और दशमशक के विविध प्रकार के स्पर्शो/दु खो को सदा समितिपूर्वक सहन किया।

४१ इसके अनन्तर दुश्चर लाढ देश की वज्रभूमि और शुभ्रभूमि मे विचरण किया। वहाँ उस प्रान्त के शयनो/वास-स्थानो और प्रान्त के आसनो का सेवन किया।

४२ लाढ देश मे जनपद के लोगो ने उन पर वहुत उपसर्ग/उपद्रव किया और मारा। वहाँ उन्हें आहार रूक्षदेश्य/रूखा-सूखा मिलता था। वहाँ कुक्कर काट लेते और ऊपर आ पडते थे।

४३. अप्पे जणे णिवारेइ, लूसणए सुणए दसमाणे।
छुछुकारिंति आहंसु, समणं कुक्कुरा दसंतुत्ति ॥

४४. एलिक्खए जणा भुज्जो, बहवे वज्जभूमि फरुसासी।
लट्ठि गहाय णालीय, समणा तत्थ य विहरिंसु ॥

४५. एवं पि तत्थ विहरंता, पुट्ठपुव्वा अहेसि सुणएहिं।
संलुंचमाणा सुणएहिं, दुच्चराणि तत्थ लाढेहिं ॥

४६ णिहाय दंड पाणेहिं, तं कायं वोसज्जमणगारे।
अह गामकंटए भगवं, ते अहियासए अभिसमेच्चा ॥

४७ णाओ संगामसीसे वा, पारए तत्थ से महावीरे।
एवं पि तत्थ लाढेहिं, अलद्धपुव्वो वि एगया गामो ॥

४८. उवसंकमंतमपडिण्णं, गामंतियं पि अप्पत्तं।
पडिणिक्खमित्तु लूसिंसु, एत्तो परं पलेहित्ति ॥

४९. हय-पुव्वो तत्थ दंडेण, अदुवा मुट्ठिणा अदु कुंत-फलेण।
अदु लेलुणा कवालेण, 'हंता-हंता' बहवे कंदिंसु ॥

५०. मंसाणि छिण्णपुव्वाइं, उट्ठंभिया एगया कायं।
परीसहाइं लुंचिंसु, अहवा पंसुणा अवकिरिंसु ॥

५१. उच्चालइय णिहणिंसु, अदुवा आसणाओ खलइंसु।
वोसट्ठकाए पणयासी, दुक्खसहे भगवं अपडिण्णे ॥

५२. सूरो संगामसीसे वा, संवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणे फरुसाइं, अचेले भगवं रीइत्था ॥

४३ कुत्तो के काटने और भौकने पर कुछ लोग उन्हे रोकते और कुछ लोग छू-छू करते, ताकि वे श्रमरण को काट ले ।

४४. जिस वज्रभूमि मे बहुत से लोग रूक्षभोजी एव कठोर स्वभावी थे, जहा लाठी और नालिका ग्रहरण कर श्रमरण विचरण करते थे ।

४५. इस प्रकार वहाँ विहार करते हुए कुत्तो के द्वारा पीछा किया जाता । कुत्तो के द्वारा नोच लिया जाता । उस लाढ वेश मे विहार करना कठिन था ।

४६ अनगार प्राणियो के प्रति दण्ड/हिंसा का त्यागकर अपने शरीर को विसर्जन कर देते तथा ग्रामकण्टक/तीक्ष्ण वचन को समभावपूर्वक सहन करते थे।

४७ इसी प्रकार उस लाढ देश मे कभी-कभी ग्राम भी नही मिलता था। जैसे सग्रामशीर्ष मे हाथी पारग/पारगामी होता है, वैसे ही महावीर थे ।

४८ उपसक्रमरण/विचरण करते हुए अप्रतिज्ञ भगवान् को ग्रामन्तिक होने पर या न होने पर भी वहाँ के लोग प्रतिनिष्क्रमरण कर मारते और कहते—अन्यत्र पलायन करो ।

४९. वहाँ दण्ड, मुष्टि, कुन्तफल/भाला, लोष्ट/मिट्टी के ढेले अथवा कपाल से प्रहार करते हुए 'हन्त ! हन्त !' चिल्लाते ।

५० कुछ लोग माम काट लेते, थूक देते, परीपह करते, नोच लेते अथवा पासु/धुली से अवकीर्ण/ढक देते ।

५१ कुछ लोग भगवान् को ऊँचा उठाकर नीचे पटक देते अथवा आसन से स्खलित कर देते । किन्तु भगवान् काया का विसर्जन (कायोत्सर्ग) किए हुए अप्रतिज्ञ-भावना से समर्पित होकर दु ख सहन करते थे ।

५२ वे भगवान् महावीर सग्रामशीर्ष मे सवृत शूरवीर की तरह थे । स्पर्शों/कष्टो का प्रतिसेवन करते हुए भगवान् अचल विचरण करते रहे ।

५३. एस विही अणुक्कतो, माहणेण मईमया ।
बहुसो अपडिण्णेणं, भगवया एवं रीयति ॥

—त्ति बेमि ।

चउत्थो उद्देसो

५४. ओमोयरियं चाएइ, अपुट्ठे वि भगव रोगेहिं ।
पुट्ठे वा से अपुट्ठे वा, णो से साइज्जइ तेइच्छं ॥

५५. ससोहणं च वमणं च, गायब्भगणं सिणाणं च ।
संबाहणं ण से कप्पे, दंत-पक्खालणं परिण्णाए ॥

५६. विरए गामधम्मेहिं, रीयइ माहणे अबहुवाई ।
सिसिरंमि एगया भगवं, छायाए झाइ आसी य ॥

५७. आयावई य गिम्हाणं, अच्छइ उक्कुडुए अभित्तावे ।
अदु जावइत्थ लूहेण, ओयण-मंथु-कुम्मासेण ॥

५८. एयाणि तिण्णि पडिसेवे, अट्ठ मासे य जावए भगवं ।
अपिइत्थ एगया भगवं, अद्धमासं अदुवा मासं पि ॥

५९. अवि साहिए दुवे मासे, छप्पि मासे अदुवा अपिवित्ता ।
राओवराय अपडिण्णे, अन्नगिलायमेगया भुंजे ॥

६०. छट्ठेण एगया भुंजे, अदुवा अट्ठमेण दसमेण ।
दुवालसमेण एगया भुंजे, पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे ॥

५३ मतिमान माहन भगवान महावीर ने इस अनुक्रान्त/प्रतिपादित विधि का अप्रतिज्ञ होकर अनेक बार आचरण किया ।

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

चतुर्थ उद्देशक

५४ भगवान् रोग से अस्पृष्ट होने पर अवमौदर्य (ऊनोदर/अल्पाहार) करते थे । वह रोग से स्पृष्ट या अस्पृष्ट होने पर चिकित्सा की अभिलाषा नही करते थे ।

५५ वे सशोधन/विरेचन, वमन, गात्र-अभ्यगन/तैल-मर्दन, स्नान, सबाधन/वैय्या-वृत्ति और दन्त-प्रक्षालन को त्याज्य जानकर नही करते थे ।

५६ माहन/भगवान् ग्रामधर्म से विरत होकर अ-बहुवादी/मौनपूर्वक विचरण करते थे । कभी-कभी शिशिर मे भगवान् छाया मे ध्यान करते थे ।

५७ ग्रीष्म मे अभितापी होते हुए उत्कुट/ऊकडू बैठते और आताप लेते । अथवा रूक्ष ओदन, मथु/सत्तु और कुल्माप/उडद की कनी से जीवन-यापन करते थे ।

५८ भगवान ने इन तीनो का आठ मास पर्यन्त सेवन किया । कभी-कभी भगवान ने अर्धमास अथवा एक मास तक पानी नही पिया ।

५९ कभी दो मास से अधिक अथवा छह मास तक भी पानी नही पिया । वे रात-दिन अप्रतिज्ञ रहे । उन्होंने अन्न ग्लान/नीरस भोजन का आहार किया ।

६० उन्होने कभी दो दिन, तीन दिन, चार दिन या पाँच दिन के बाद छठे दिन भोजन लिया । वे समाधि के प्रेक्षक अप्रतिज्ञ रहे ।

६१. णच्चाणं से महावीरे, णो वि य पावगं सयमकासी ।
अण्णेहिं वा ण कारित्था, कीरतं पि णाणुजाणित्था ॥

६२. गामं पविसे णयरं वा, घासमेसे कड परट्ठाए ।
सुविसुद्धमेसिया भगव, आयत-जोगयाए सेवित्था ॥

६३-६५. अदु वायसा दिगिंछत्ता, जे अण्णे रसेसिणो सत्ता ।
घासेसणाए चिट्ठते, सयय णिवइए य पेहाए ॥
अदु माहण च समण वा, गामपिंडोलग च अतिहिं वा ।
सोवाग मूसियारिं वा, कुक्कुर वावि विट्ठिय पुरओ ॥
वित्तिच्छेय वज्जतो, तेसप्पत्तिय परिहरतो ।
मद परक्कमे भगव, अहिंसमाणो घासमेसित्था ॥

६६. अवि सूइय व सुक्क वा, सीयपिंडं पुराणकुम्मास ।
अदु बुक्कस पुलाग वा, लद्धे पिंडे अलद्धे दविए ॥

६७ अवि झाइ से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए झाणं ।
उड्ढअहे तिरिय च, पेहमाणे समाहिमपडिण्णे ॥

६८ अकसाई विगयगेहीय, सद्दरूवेसुऽमुच्छिए झाइ ।
छउमत्थे वि परक्कममाणे, णो पमाय सइ पि कुव्वित्था ॥

६९. सयमेव अभिसमागम्म, आयतजोगमायसोहीए ।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले, आवकह भगव समिआसी ॥

७० एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।
बहुसो अपडिण्णेण, भगवया एवं रीयति ॥

—त्ति बेमि ।

□

६१ महावीर ने यह जानकर न स्वय पाप किया, न अन्य से कराया और न ही पाप करते हुए का समर्थन किया।

६२ ग्राम या नगर मे प्रवेश कर परार्थकृत/गृहस्थकृत आहार की एषणा करते थे। सुविशुद्ध की एषणा कर भगवान ने आयत-योग/सयत-योग का सेवन किया।

६३-६५ भूख से पीडित काक आदि रसाभिलाषी प्राणी एषणा के लिए चेष्टा करते हैं। उनका सतत निपात देखकर माहन, श्रमण, ग्रामपिण्डोलक या अतिथि, श्वापाक/चाण्डाल, मूषिकारी/बिल्ली या कुक्कुर को सामने स्थित देखकर वृत्तिच्छेद का वर्जन करते हुए, अप्रत्यय/अप्रीति का परिहार करते हुए भगवान मन्द पराक्रम करते और अहिंसापूर्वक आहार की गवेषणा करते थे।

६६. चाहे सूपिक/दूध-दही मिश्रित आहार हो या सूका, ठण्डा-बासी आहार, पुराने कुल्माष/उडद, बुक्कस/सत्तू अथवा पुलाग आहार के उपलब्ध या अनुपलब्ध होने पर भी वे समभाविक रहे।

६७ वे महावीर उत्कृष्ट आसनो मे स्थित और स्थिर ध्यान करते थे। ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग-ध्येय को देखते हुए समाधिस्थ एव अप्रतिज्ञ रहते थे।

६८ वे अकषायी, विगतगृद्ध, शब्द एव रूप मे अमूर्छित होते हुए ध्यान करते थे। छद्मस्थ-दशा मे पराक्रम करते हुए उन्होने एक बार भी प्रमाद नही किया।

६९ स्वय ही आत्म-शुद्धि के द्वारा आयतयोग को जानकर अभिनिर्वृत्त, अमायावी भगवान जीवनपर्यन्त समितिपूर्वक विचरण करते रहे।

७० मतिमान माहन भगवान महावीर ने इस अनुक्रान्त/प्रतिपादित विधि का अप्रतिज्ञ होकर आचरण किया।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

□